ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-1 अंक- 12, दिसम्बर- 2025

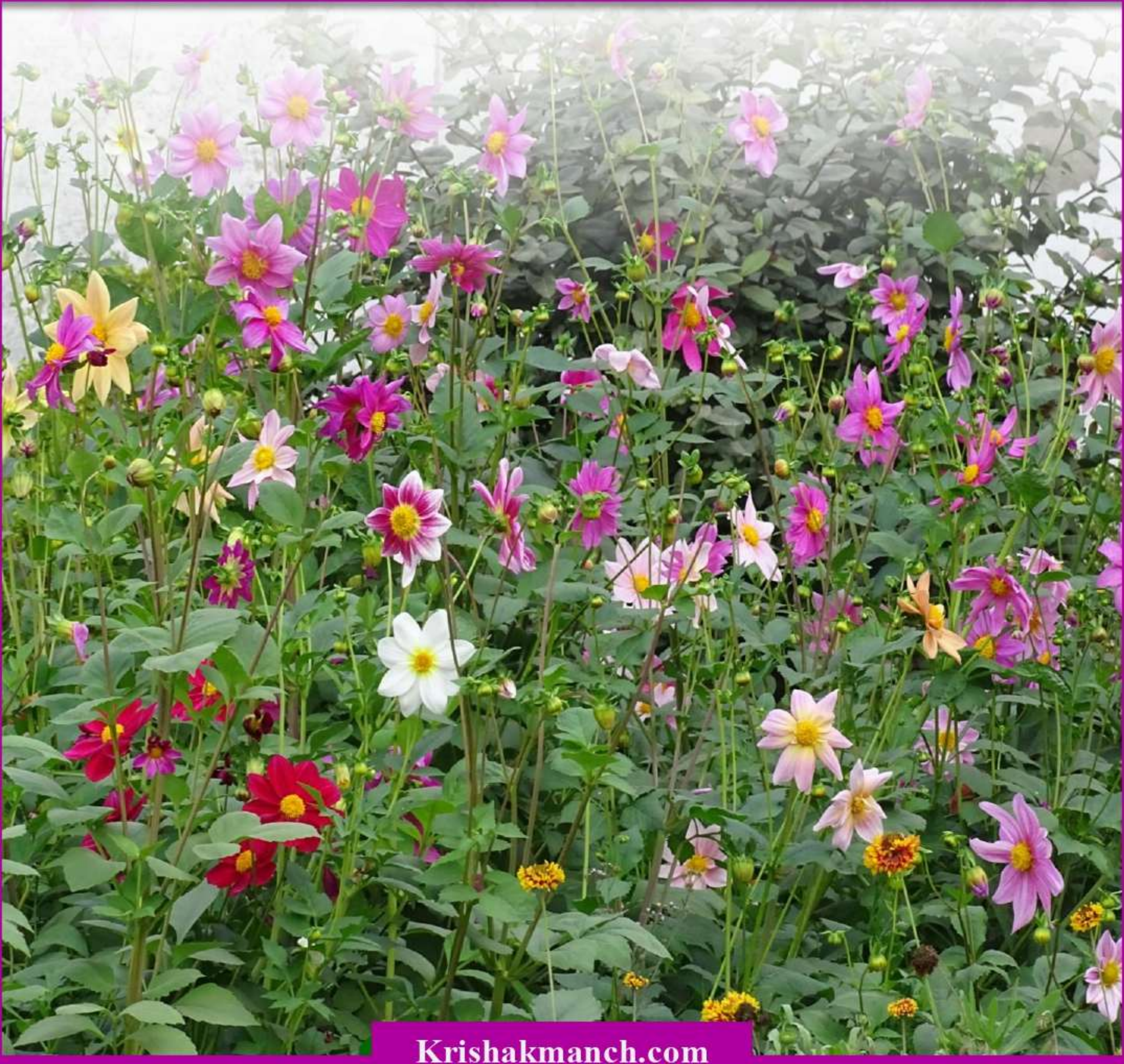

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

श्री कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक/शोधार्थी
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

श्री शिवशंकर पटेल
शोधार्थी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	करौंदा: स्वास्थ्यवर्धक और पोषक तत्वों से समृद्ध फल।	4-7
2	अंजीर: स्वास्थ्य के लिए एक अनोखा फल।	8-10
3	कीटनाशी बना रहे धरती की कोख को बांझ।	11-13
4	ऊतक संवर्धन विधि द्वारा ड्रैगन फ्रूट का प्रजनन।	14-15
5	सैन्य सेवा से मधुमक्खी पालन तक – "संजीवनी" सफलता की उड़ान।	16-19
6	शून्य बजट प्राकृतिक खेती: आज के समय की मांग।	20-23
7	प्राकृतिक खेती से बदलती ग्रामीण महिलाओं की तकदीर।	24-27
8	ट्राइकोडर्मा का पौध रोग प्रबंधन में योगदान।	28-29
9	डिजिटल कृषि सलाह सेवाओं का किसानों के ज्ञान, खेती के तरीकों और नई तकनीक अपनाने पर असर।	30-32
10	रेशम उत्पादन: प्रकृति, विशेषता और रेशम का महत्व।	33-36
11	रेशमकीट पालन: ग्रामीण समृद्धि और आजीविका का आधार।	37-40
12	वैज्ञानिक पद्धति से टमाटर की उन्नत खेती।	41-43
13	मिर्च की वैज्ञानिक खेती।	44-45
14	फूलों की खेती: ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नया आयाम।	46-49
15	पुनर्योजी कृषि: स्थाई खेती पद्धति।	50-51

करौंदा: स्वास्थ्यवर्धक और पोषक तत्वों से समृद्ध फल

विकास चंद्रा- सहायक प्राध्यापक, **रूबी रानी-** अध्यक्ष, **पवन कुमार-** सहायक प्राध्यापक
शेषांक कुमार एवं रूबी कुमारी राय- शोध छात्र
उद्यान विभाग, (फल एवं फल प्रौद्योगिकी), बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर, भागलपुर (बिहार)

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर वैश्विक चुनौती के रूप में उभर कर सामने आया है, जो बारहमासी बागवानी फसलों की उत्पादकता और स्थायित्व को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा है। ऐसी परिस्थितियों में, जैविक एवं अजैविक तनावों को सहन करने वाली स्थानीय रूप से अनुकूलित सशक्त फसल प्रजातियों की पहचान एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता महसूस की जा रही है। करौंदा एक अल्प-उपयोगी फल होने के बावजूद अपने पोषणीय एवं औषधीय गुणों के कारण तीव्र आर्थिक महत्व प्राप्त कर रही है। यह फल फाइटोन्यूट्रिएंट्स, विशेष रूप से लोहा और एस्कॉर्बिक एसिड का उत्कृष्ट स्रोत है। इसके अतिरिक्त, करौंदा के फलों का उपयोग जैम, जेली, स्क्वैश तथा अचार जैसे विविध प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। भारत के मध्य भागों में करौंदा अचार अत्यधिक लोकप्रिय है, जबकि हाल के वर्षों में करौंदा जैम का व्यावसायिक मूल्य भी उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। करौंदा की आनुवंशिक विविधता में सुधार हेतु इसके विविधता केंद्रों से विशिष्ट जीनोटाइप्स का संग्रह, मूल्यांकन और संरक्षण किया जाना आवश्यक है। देश के विभिन्न भागों में फसल सुधार कार्यक्रमों के अंतर्गत इन जीनोटाइप्स का संग्रहण, लक्षणांकन एवं संरक्षण कार्य सक्रिय रूप से चल रहा है। जलवायु परिवर्तन की वर्तमान परिस्थितियों में करौंदा जैसी जलवायु-स्मार्ट फसलों का विकास एवं व्यावसायिक स्तर पर विस्तार, स्थायी बागवानी विकास, पोषण सुरक्षा तथा आर्थिक सशक्तिकरण के लिए अत्यंत संभावनाशील सिद्ध हो सकता है।

करौंदा (कैरिसा कैरंडस) एपोसिनेसी परिवार का एक बारहमासी झाड़ी वाला पौधा है जिसके फल छोटे बेर के आकार के होते हैं। इसे विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में क्राइस्ट थॉर्न, करोंडा, करोंजा, करमांडा और कावले हन्नू के नाम से भी जाना जाता है। फल सफेद, हरे और लाल-गुलाबी रंग के होते हैं जो अम्लीय प्रकृति के होते हैं और अचार, कैंडी तथा चटनी बनाने के लिए व्यापक रूप से उपयोग किये जाते हैं। इसकी खेती छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात के बहुत सीमित क्षेत्र और छोटे भूभागों में की जाती है। हालाँकि, भारत के अधिकांश भागों में यह जंगली रूप में पाया जाता है। करौंदा बहुत उपयोगी और लाभदायक फल है क्योंकि इसका उपयोग-बाड़ लगाने के लिए किया जाता है, इसके फलों की व्यावसायिक बिक्री होती है और पके और परिपक्व दोनों प्रकार के फलों से कई प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार किए जाते हैं।

करौंदा न्यूट्रास्युटिकल्स का सागर है। इसमें आयरन और एस्कॉर्बिक एसिड प्रचुर मात्रा में होता है, इसलिए यह फल एनीमिया के इलाज के लिए उपयुक्त है। फल में एंटीस्कॉर्ब्यूटिक, जीवाणुरोधी और एंटीफंगल गुण भी होते हैं। परंपरागत रूप से, फलों का उपयोग घाव, अल्सर को ठीक करने और आंत से कीड़े निकालने के लिए किया जाता है। यह विटामिन सी, कार्बनिक अम्ल, आयरन और द्वितीयक चयापचयों जैसे फेनोलिक्स, एंथोसायनिन और एंटीऑक्सीडेंट का अच्छा स्रोत है। इसमें निहित मजबूत जैवसक्रिय यौगिकों के कारण कई हृदय संबंधी रोगों

ISSN: 3049-2211

को ठीक करने की प्रबल क्षमता रखता है, इसलिए यह जनजातीय लोगों के लिए पोषण और आजीविका सुरक्षा के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में कार्य करता है। अधिकांश जनजातीय क्षेत्रों में लोग फल एकत्र करते हैं और स्थानीय बाजार में बेचते हैं। स्थानीय महिला फलों से मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार करती हैं और इससे उन्हें अतिरिक्त लाभ मिलता है। इसके अलावा, करोंदा का उपयोग सजावटी हेज बनाने के लिए भी किया जाता है। आजकल, शहरी क्षेत्रों, विश्वविद्यालयों और संस्थानों में, करौंदा हेज का चलन बढ़ रहा है।

भौगोलिक वितरण:

करौंदा शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों की फल है। यह पहाड़ी इलाकों के साथ-साथ ऊबड़-खाबड़ भूमि में भी आसानी से उगता है। करौंदा जंगली रूप में व्यापक रूप से उपलब्ध है और छत्तीसगढ़ (विशेषकर बस्तर, रायपुर और जगदलपुर जिलों के पास), मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी घाट के कुछ हिस्सों में पाया जाता है। राजस्थान में, करौंदा के पौधे आमतौर पर घर के पीछे और खेतों की जैव-बाड़ में उगाए जाते हैं। राजस्थान के दक्षिणी भागों जैसे झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, चित्तौड़गढ़ और मध्य प्रदेश के सीमावर्ती क्षेत्र में करौंदा की समृद्ध विविधता है। राजस्थान के अधिकांश जनजातीय क्षेत्रों में करौंदा की समृद्ध विविधता है। करौंदा (बैंगनी रंग का फल) व्यापक रूप से उपलब्ध है और आदिवासी लोगों के लिए आर्थिक सुरक्षा का एक प्रमुख स्रोत है।

प्रमुख किस्में और उनकी विशेषताएं:

करौंदा एक अत्यंत आनुवंशिक रूप से विविध फल प्रजाति है, जो फल के आकार, आकृति, रंग, स्वाद, बीज संख्या, उपज क्षमता तथा जैव रासायनिक गुणों में व्यापक फेनोटाइपिक और जीनोटाइपिक विविधता प्रदर्शित करती है।

प्रजाति	संस्थान	लक्षण	अभियुक्ति
पंत मनोहर	जीबीपीयूएटी, पंतनगर (उत्तराखंड)	बड़े, अंडाकार फल परिपक्वता पर गुलाबी लाल उच्च टीएसएस (12-14°ब्रिक्स)	ताजा उपभोग और प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त
पंत सुदर्शन		मध्यम आकार के, गोल फलय उच्च अम्लता और विटामिन सी	अचार और जेली बनाने के लिए उत्कृष्ट
पंत सुवर्ण		हल्के गुलाबी फल, मुलायम बनावट, मध्यम टीएसएस	दोनों प्रकार में प्रयोग होने वाली किस्म (टेबल और प्रसंस्करण)
कोंकण बोल्ड	डॉ. बी.एस. कोंकण कृषि विद्यापीठ, दापोली (महाराष्ट्र)	बड़े आकार के, गहरे बैंगनी रंग के फल रसदार गूदा	जैम, जेली और स्क्वैश बनाने के लिए आदर्श
कोंकण श्वेता		सफेद फल वाली किस्म कम अम्लीय आकर्षक और दुर्लभ	टेबल के लिए उपयुक्तय मानी जाती है।
अजमेर करौंदा -1	आईसीएआर-एनआरसीएसएस, अजमेर (राजस्थान)	उच्च उपज, बड़े फल, अच्छी गूदा प्राप्ति शुष्क परिस्थितियों के प्रति सहनशील	अचार उद्योग के लिए अच्छा होता है।
मारु गौरव	आईसीएआर-काजरी, जोधपुर (राजस्थान)	अचार, जैम, जेली, स्क्वैश और कैंडी निर्माण के लिए आदर्श माना जाता है।	सूखा एवं उष्ण परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक सहनशील।
थार कमल	आईसीएआर-सीआईएएच, बीकानेर (राजस्थान)	जैम, जेली, अचार, स्क्वैश और पेय पदार्थों के निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त होता हैं।	यह पौधा सूखा-सहनशील, रोग-प्रतिरोधी तथा कम रख-रखाव वाली फसल है।

खेती एवं प्रवर्धन:

करौंदा एक मजबूत, कांटेदार, सदाबहार झाड़ीदार फलदार पौधा है, जो शुष्क और अर्धशुष्क जलवायु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह कम देखभाल में भी अच्छी उपज देता है और सीमांत भूमि, बंजर क्षेत्र तथा बाड़ों के लिए अत्यंत उपयुक्त फसल है। इसकी खेती के लिए गर्म और शुष्क जलवायु उपयुक्त रहती है तथा यह 25-40°C तापमान में अच्छी वृद्धि करता है। करौंदा हल्की दोमट या रेतीली दोमट मिट्टी में अच्छी तरह बढ़ता है, हालांकि यह क्षारीय एवं हल्की बंजर भूमि में भी फलदायी रहता है। मिट्टी का pH 6.5 से 8.0 के बीच होना उपयुक्त माना गया है।

करौंदा का प्रवर्धन बीज तथा वनस्पतिक दोनों तरीकों से किया जा सकता है। बीज से तैयार पौधे मजबूत होते हैं, परंतु उनमें आनुवंशिक विविधता अधिक पाई जाती है। इसलिए एकरूप पौध तैयार करने के लिए वनस्पतिक प्रवर्धन विधियाँ अधिक उपयोगी हैं। कलम द्वारा प्रवर्धन सर्वाधिक प्रचलित है। इसके लिए जून-जुलाई में अर्ध-पक्की शाखाओं से 10-15 सेमी लंबी कलमें लेकर उन्हें 3000 चचउ इंडोल ब्युट्रिक अम्ल (IBA) घोल में डुबोकर रेत या नारियल बुरादा वाले माध्यम में लगाया जाता है। लगभग 4-6 सप्ताह में जड़ें विकसित हो जाती हैं। इसके अलावा मानसून के समय गूटी (एयर लेयरिंग) विधि से भी पौधे तैयार किए जाते हैं। यह विधि अधिक सफल और तेज मानी जाती है क्योंकि इसमें पौधा मातृ पौधे से जुड़ा रहता है और जड़ बनने के बाद उसे अलग कर भूमि में लगाया जा सकता है।

ISSN: 3049-2211

पौध तैयार होने के बाद रोपाई का समय वर्षा ऋतु (जून-जुलाई) सर्वोत्तम रहता है। इसके लिए 45 × 45 × 45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं, जिनमें 20-25 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाई जाती है। पौधों के बीच 2-3 मीटर की दूरी रखी जाती है। शुरुआती दो से तीन वर्षों तक नियमित सिंचाई आवश्यक होती है, ताकि पौधे अच्छी तरह स्थापित हो सकें। उसके बाद यह फसल सूखा सहन कर लेती है और कम सिंचाई में भी अच्छी उपज देती है।

फसल की देखभाल के लिए समय-समय पर निराई-गुड़ाई करें तथा सूखी और रोगग्रस्त शाखाओं की छंटाई आवश्यक होती है। पौधे सामान्यतः 2-3 वर्ष में फल देना शुरू करते हैं। फूल अप्रैल-मई में आते हैं और फल जुलाई-अगस्त में पक जाते हैं। एक स्वस्थ पौधे से औसतन 20-30 किलोग्राम फल प्राप्त होते हैं, जबकि उन्नत किस्मों जैसे 'थार कमल' या 'थार गौरव' से 30-35 किलोग्राम फल तक की उपज मिल सकती है।

रोपाई और देखभाल:

यह एक शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु के लिए उपयुक्त फल फसल है, जो कम पानी और न्यूनतम देखभाल में भी अच्छी उपज देती है। इसकी रोपाई का सबसे उपयुक्त समय वर्षा ऋतु (जून-जुलाई) होता है, जब मिट्टी में पर्याप्त नमी रहती है। पौध लगाने से पहले खेत की अच्छी तरह जुताई कर समतल कर लें। रोपाई के लिए 45 × 45 × 45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं और उन्हें भरने से पहले कुछ दिन खुला छोड़ दिया जाता है ताकि कीट व फफूंद नष्ट हो जाएँ। प्रत्येक गड्ढे में 20-25 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद तथा थोड़ी मात्रा में बालू मिट्टी और नीम खली (250 ग्राम) मिलाना लाभकारी होता है।

रोपाई के बाद खेत में खरपतवार नियंत्रण और मिट्टी की नमी बनाए रखने के लिए समय-समय पर हल्की गुड़ाई-निराई करनी चाहिए। बरसात के बाद खेत में जल निकासी का उचित प्रबंध आवश्यक है क्योंकि पानी रुकने से जड़ों को नुकसान पहुँचता है। पौधों के चारों तरफ मल्चिंग करने से मिट्टी की नमी बनी रहती है और खरपतवार की वृद्धि नियंत्रित होती है।

छंटाई:

पौधों की छंटाई एव देखभाल का आवश्यक भाग है। छंटाई का सबसे उचित समय फल तुड़ाई के बाद, अर्थात सितंबर - अक्टूबर माह में होता है। छंटाई के दौरान सूखी, रोग ग्रस्त और अंदर की ओर बढ़ने वाली शाखाओं को काट दिया जाता है। इससे पौधों में नई टहनियाँ निकलती हैं और अगले वर्ष फल धारण में वृद्धि होती है।

तुड़ाई एव तुड़ाई के बाद की देखभाल:

करौंदा एक मध्यम अवधि में फल देने वाली फल है, जिसमें पौधे सामान्यतः रोपाई के 2-3 वर्ष बाद फल देना शुरू हो जाता हैं। फूल मुख्यतः अप्रैल से मई के बीच आते हैं और जुलाई से अगस्त के दौरान फल पक कर तैयार हो जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में जलवायु की स्थिति के अनुसार फलों की तुड़ाई सितंबर तक भी की जाती है। फलों की तुड़ाई का सही समय उनकी परिपक्वता अवस्था पर निर्भर करता है। करोंदा के फल प्रारंभ में हरे होते हैं, जो धीरे-धीरे गुलाबी, लाल या गहरे बैंगनी रंग के हो जाते हैं। प्रसंस्करण के लिए सामान्यतः अधपके फल उपयोग किए जाते हैं क्योंकि उनमें अम्लता और फाइबर की मात्रा अधिक होती है, जो अचार एवं जैली निर्माण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। जबकि पके हुए फल जैम, जेली और स्क्वैश जैसे उत्पादों के लिए अधिक उपयुक्त माने जाते हैं क्योंकि उनमें मिठास अधिक होती है।

करौंदा की तुड़ाई हाथ से सावधानीपूर्वक की जाती है क्योंकि पौधे में काँटे होते हैं और फल नाज़ुक होते हैं। फल तोड़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फल को निचोड़ने या अधिक दबाने से उसकी त्वचा फट सकती है, जिससे उसका भंडारण क्षमता कम हो जाता है। तुड़ाई सुबह या शाम के समय करनी चाहिए जब तापमान अपेक्षाकृत कम हो। तुड़ाई के तुरंत बाद फलों को छायादार स्थान पर रखा जाना चहिए ताकि वे अधिक ताप से नर्म न हो जाएँ। इसके बाद फलों को ग्रेडिंग करके आकार और रंग के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। अच्छे गुणवत्ता वाले फलों को प्रसंस्करण या विपणन के लिए चुना जाता है, जबकि छोटे या क्षतिग्रस्त फल स्थानीय उपयोग या मूल्य संवर्धन में प्रयोग किए जा सकते हैं। फलों की सफाई के लिए उन्हें हल्के पोटेशियम परमैंगनेट (0.1%) के घोल से धोना लाभकारी होता है जिससे सतह पर मौजूद रोगजनक नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद फल अच्छी तरह सूखने दिए जाते हैं।

तुड़ाई के बाद प्रसंस्करण:

करौंदा के फलों से अचार, जैम, जेली, स्क्वैश, सिरप, चटनी और आर.टी.यस. पेय पदार्थ बनाए जाते हैं। अधपके फलों से बना करौंदा अचार भारत के कई हिस्सों में प्रसिद्ध है। वहीं पके फलों से बना करौंदा जैम बाजार में उच्च मांग वाला उत्पाद बन चुका है। मूल्य संवर्धन से न केवल फलों की उपयोगिता बढ़ती है बल्कि किसानों को अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है। फलों में मौजूद एस्कॉर्बिक एसिड, आयरन और एंटीऑक्सीडेंट्स इसे पोषण दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाते हैं।

इस प्रकार, करौंदा की तुड़ाई समय पर, सावधानीपूर्वक एवं उचित तरीके से की जाए और तुड़ाई के बाद सही ग्रेडिंग, सफाई, भंडारण व प्रसंस्करण की व्यवस्था की जाए तो फलों की गुणवत्ता और बाजार मूल्य दोनों में वृद्धि होती है। उचित पोस्ट-हार्वेस्ट प्रबंधन से यह फसल किसानों के लिए अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है, विशेषकर शुष्क और सीमांत क्षेत्रों में।

करौंदा का प्रसंस्करण और मूल्य-संवर्धन:

करौंदा एक पौष्टिक और औषधीय गुणों से भरपूर फल है, जो अपने खट्टे-मीठे स्वाद, गहरे रंग और उच्च एस्कॉर्बिक एसिड, आयरन तथा एंटीऑक्सीडेंट्स की उपस्थिति के कारण प्रसंस्करण के लिए अत्यंत उपयुक्त माना जाता है। यह फल विभिन्न परिपक्वता अवस्थाओं पर अलग-अलग प्रकार के प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। अधपके फल जहाँ अचार और चटनी के लिए उपयुक्त होते हैं, वहीं पूर्ण रूप से पके फल जैम, जेली, स्क्वैश और सिरप जैसे मीठे उत्पादों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं।

करौंदा का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

करौंदा फलों की प्रसंस्करण योग्य क्षमता काफी अधिक होती है। फलों में उपस्थित प्राकृतिक पेक्टिन, अम्लता और आकर्षक रंग इन्हें जैम और जेली निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त बनाते हैं। करौंदा जैम गहरे लाल रंग का होता है, जो स्वाद में हल्का खट्टा-मीठा और अत्यंत आकर्षक होता है। इसी प्रकार करौंदा स्क्वैश और आर.टी.यस. (रेडी टू सर्व) पेय पदार्थ बाजार में लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं क्योंकि इनमें प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स और विटामिन- सी की मात्रा अधिक होती है।

तालिका-2: करौंदा का प्रसंस्करण एवं मूल्य-संवर्धन

उत्पाद	उपयोग किए जाने वाले फल की अवस्था	प्रमुख विशेषताएँ	मूल्य-संवर्धन
अचार	अधपके फल	खट्टा स्वाद, उच्च अम्लता	घरेलू व व्यावसायिक उपयोग, ग्रामीण उद्योग में लोकप्रिय
जैम	पूर्ण पके फल	गहरा लाल रंग, मिठास एवं पेक्टिन से भरपूर	उच्च बाजार मांग वाला प्रसंस्कृत उत्पाद
जेली	पके फल	प्राकृतिक पेक्टिन व स्वाद युक्त	लंबे समय तक सुरक्षित रहने वाला उत्पाद
स्क्वैश	पके फल का रस	विटामिन- सी व एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर	स्वास्थ्यवर्धक पेय, शीतल पेय उद्योग में प्रयोग
आर.टी.यस. (रेडी टू सर्व)	पके फल	हल्का खट्टा-मीठा स्वाद, आकर्षक रंग	उपभोक्ताओं में लोकप्रिय पेय पदार्थ
सूखा पाउडर	पके फल को सुखाकर	प्राकृतिक रंग व स्वादयुक्त पाउडर	फ्लेवर एजेंट और फूड कलरिंग में उपयोग

बाजार मूल्य:

ताजे फलों को सीधे बाजार में बेचा जा सकता है, जहां 30-60 रुपये प्रति किलोग्राम तक की कीमत मिलती है। आदिवासी क्षेत्रों में लोग फलों को पास के शहर और बाजार में बेचते हैं। उनमें से कुछ लोग राजमार्गों के किनारे अपनी अस्थायी दुकानें लगाते हैं और बांस की टोकरियों में फल को रखकर बेचते हैं। हाल ही में, कुछ प्रसंस्करण उद्योगों के आने से आदिवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। अतः वह एक ही बिक्री केन्द्र पर ग्रामीणों से फल खरीदते हैं और उन्हें बाजार की तुलना में थोड़ा अधिक मूल्य देते हैं। कृषि विज्ञान केन्द्रों, गैर सरकारी संगठनों और स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) की भागीदारी उन्हें लोकप्रिय बनाती है और उन्हें अपने ताजे तथा मूल्यवर्धित उत्पादों को बेचने में मदद करती है। वे दूरदराज के क्षेत्रों में प्रशिक्षण सुविधाएं भी उपलब्ध करा रहे हैं।

****

अंजीरः स्वास्थ्य के लिए एक अनोखा फल

विकास चंद्रा- सहायक प्राध्यापक, **रवींद्र कुमार-** सहायक प्राध्यापक, **कुमारी करुणा-** सह-प्राध्यापक
सामिक सेन गुप्ता- सहायक प्राध्यापक, **डी. के. जायसवाल -** सहायक प्राध्यापक
उद्यान विभाग, (फल एवं फल प्रौद्योगिकी), बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर, भागलपुर

अंजीर दुनिया के कई समशीतोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है। यह सूखा और ताजा दोनों रूपों में खाया जाता है, क्योंकि ताजा अंजीर बहुत जल्दी खराब हो जाता है, इसलिए ताजा अंजीर केवल नजदीकी बाजार में ही खाया जाता है, लेकिन सूखे अंजीर को दूर के बाजारों में निर्यात किया जाता है। ताजे और सूखे दोनों फल फाइबर, पोटेशियम, कैल्शियम और आयरन से भरपूर होते हैं। ताजे अंजीर शारीरिक क्षति के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, तथा रोग और संक्रमण के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। फल प्रजनक इसे इसकी पोषण गुणवत्ता के कारण, ताजे फलों के लंबे समय तक भंडारण के लिए नई उन्नत किस्मों के विकास के लिए एक चुनौती के रूप में ले रहे हैं।

अंजीर को वानस्पतिक रूप से फिकस कैरिका कहा जाता है, यह मोरेसी परिवार के अंतर्गत आता है, इसकी उत्पत्ति अरब प्रायद्वीप, इटली और यूएसएसआर के दक्षिणी भागों में हुई तथा इसकी खेती एशिया माइनर और भूमध्य क्षेत्र के सभी देशों में की जा रही है। अंजीर का फल स्वादिष्ट और मीठा होता है इसमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 17° ब्रिक्स होता है तथा इसका प्रसंस्करण गुणवत्ता अच्छा होता है। अतः इसे सूखे फल के रूप में निर्यात के लिए उपयोग किया जा सकता है। अंजीर सबसे पुराने फलों में से एक है, आकारिकी की दृष्टि से इसे 'साइकोनियम' कहा जाता है जो एक वानस्पतिक मांसल ऊतक है, जिसके अन्दर छोटे-छोटे फल लगे होते हैं। अंजीर एक स्त्रीलिंगीय प्रजाति है और कुछ मादा प्रजातियों को परागण की आवश्यकता होती है, जबकि अन्य पार्थेनोकार्पिक के रूप में फलन देती हैं। परागण मुख्यत ततैया द्वारा होता है। अंजीर को उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण फसल के रूप में उगाया जाता है। यह सबसे अधिक साल्ट व सूखा सहन करने फलो में मुख्य स्थान रखता है।

अंजीर की पुरानी समय से बागवानी स्पेन में की जा रही है, इसके बाद इटली, इराक, सीरिया, टर्की और अन्य भूमध्यसागरीय देशों में उगाई जाती है। स्पेन और इटली एक समय विश्व की दो तिहाई फल पैदा करते थे। भारत में इसकी खेती महाराष्ट्र और गुजरात के पश्चिमी भागों तथा बेंगलुरु (बेल्लारी, श्रीरंगपट्टनम, चित्रदुर्ग) और तमिलनाडु के छोटे क्षेत्रों तक ही सीमित है। उत्तर भारत में, अधिकांश खेती उत्तर प्रदेश में सीमित है। वर्तमान में तुर्की और मिस्र अंजीर के प्रमुख उत्पादक हैं, जो महाराष्ट्र में 600 हेक्टेयर और दक्षिण भारत में 120 हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है (एनएचबी, 2019)।

पोषण का महत्व

अंजीर एक अत्यधिक पौष्टिक फल है जिसमें शर्करा की मात्रा अधिक और अम्ल की मात्रा कम होती है, इसमें कैलोरी (269), प्रोटीन और कैल्शियम (दूध से अधिक), आयरन तथा फलों में सबसे अधिक फाइबर से भरपूर होता है। अंजीर के फल अक्सर ताजा, सूखे या डिब्बाबंद रूप में उपयोग किए जाते हैं। सूखे अंजीर का पोषण सूचकांक 11 होता है, जबकि सेब का 9, किशमिश का 8, और खजूर व नाशपाती का 6 होता है। अंजीर की रासायनिक संरचना और स्वाद उसकी किस्म

के अनुसार अलग-अलग होते हैं। ताजे और सूखे अंजीर, दोनों ही पोषक तत्वों और जैव-रासायनिक गुणों से भरपूर होते हैं।

उपयोग

अंजीर के फलों को ताजा, संरक्षित और सूखे या डिब्बाबंद रूप में प्रयोग किया जाता है। यह सूखे फल के रूप में बहुत प्रसिद्ध है। इससे निकलने वाले लेटेक्स का उपयोग दूध को जमाने के लिए किया जाता है। कच्चे फलों और पेड़ के किसी भी भाग का लेटेक्स अगर तुरंत न हटाया जाए तो त्वचा में गंभीर जलन पैदा कर सकता है। भारत में अंजीर के पत्तों का उपयोग चारे के लिए किया जाता है। दक्षिणी फ्रांस में, अंजीर के पत्तों का उपयोग इत्र सामग्री के स्रोत के रूप में किया जाता है, जिसे 'अंजीर-पत्ता निरपेक्ष' कहा जाता है। इससे प्रोटीन-पाचक एंजाइम फिसिन को अलग किया जा सकता है जिसका उपयोग मांस को नरम करने, वसा को कम करने और पेय पदार्थों को साफ करने के लिए किया जाता है। उष्णकटिबंधीय अमेरिका में लेटेक्स का उपयोग अक्सर बर्तन धोने के लिए किया जाता है।

तालिका 1 अंजीर का विभिन्न रूप में उपयोग

क्र.सं	उपयोग	विवरण	टिप्पणी
1	खाद्य उपयोग	ताजे, सूखे या प्रसंस्कृत रूप में सेवन	ताजे फल, सूखे अंजीर, जैम, जेली, केक, मिठाई, सिरप, जूस आदि
2	औषधीय उपयोग	औषधीय गुणों से भरपूर, पाचन, हृदय और श्वसन रोगों में लाभकारी है।	कब्ज, गैस, अस्थमा, गले की खराश, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग
3	औद्योगिक उपयोग	फार्मास्यूटिकल, कॉस्मेटिक और खाद्य उद्योग में उपयोग होता है।	हर्बल सिरप, टॉनिक, फेस क्रीम, परफ्यूम, एनर्जी बार आदि
4	पशु चारा	पत्तियाँ और फल पशुओं के लिए पौष्टिक चारा है।	बकरियों और गायों के लिए उपयोगी होता है।
5	पर्यावरणीय उपयोग	छायादार, सजावटी और मृदा संरक्षण हेतु पौधा पयोग होता है।	बगीचों, पार्कों और सड़कों के किनारे लगाया जाता है
6	पोषण मूल्य	विटामिन, खनिज, फाइबर और शर्करा से भरपूर	विटामिन A, B, C, K, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरनय उच्च ऊर्जा आदि
7	धार्मिक/ सांस्कृतिक उपयोग	प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में उल्लेखितय पवित्र वृक्ष माना जाता है	बौद्ध और भूमध्यसागरीय संस्कृति में महत्व है।

लेटेक्स का व्यापक रूप से मस्से, त्वचा के छालों और घावों पर प्रयोग किया जाता है, तथा इसे रेचक और कृमिनाशक के रूप में भी लिया जाता है, लेकिन इसमें काफी जोखिम भी होता है। फलों के काढ़े से गले की खराश दूर करने के लिए गरारे किए जाते हैं दूध में उबाले गए अंजीर को बार-बार सूजे हुए मसूड़ों पर लगाने से लाभ होता है फलों का उपयोग ट्यूमर और अन्य असामान्य वृद्धि पर उपयोग में किया जाता है। पत्तियों का काढ़ा मधुमेह और गुर्दे व यकृत में कैल्सीफिकेशन के उपचार के रूप में लिया जाता है। ताजे और सूखे अंजीर लंबे समय से अपने लैक्सेटिव गुणों के लिए जाने जाते हैं।

तालिका 2. अंजीर के ताजे एव सूखे फलो की पोषण संरचना (ग्राम/100 ग्राम) में

पैरामीटर	ताजा अंजीर	सूखे अंजीर	संदर्भ
नमी	79.9-88.1	12.9-25.9	चंदन और तंवर (2015); पाल (2020); वोरा एवं अन्य (2017)
प्रोटीन	0.53-1.30	1.80-8.60	चंदन और तंवर (2015); पाल (2020); सदिया एवं अन्य (2014); वोरा एवं अन्य (2017)
लिपिड	0.20-0.53	0.14-2.70	
कच्चा फाइबर	2.10-2.20	3.68-69.4	पाल (2020); सदिया एवं अन्य (2014); वर्मा एवं अन्य (2015)
कार्बोहाइड्रेट	7.60-20.0	65.2-73.5	चंदन और तंवर (2015); पाल (2020); सदिया एवं अन्य (2014); वोरा एवं अन्य (2017)
ऊर्जा (किलो कैलोरी/100 ग्राम)	37.0	308.5-332.7	पाल (2020); सदिया एवं अन्य (2014); वर्मा एवं अन्य (2015)

पौधे का विवरण

अंजीर एक उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में मध्यम आकार उगाया जाने वाला पर्णपाती वृक्ष है, लेकिन उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में यह सदाबहार वृक्ष के रूप में कार्य करता है। शाखाएं अनियमित होती हैं, तने के आधार पर अंकुर विकसित होते हैं, पत्तियां बहुत चौड़ी, अण्डाकार और लंबे डंठल वाली होती हैं। फल अधिकतर लंबे डंठल वाले, नाशपाती के आकार के, मखमली या चिकनी त्वचा वाले, बैंगनी या काले रंग के होते हैं। अंजीर एक बहुफल है, वानस्पतिक रूप से यह एक 'साइकोनियम' है,

अंजीर का पौधा

जिसमें एक खोखला पात्र होता है, जिसके सिरे पर एक संकीर्ण छिद्र होता है तथा भीतरी सतह पर अनेक छोटे-छोटे फल लगे होते हैं।

अंजीर की विभिन्नता

विश्व में अंजीर की लगभग 700 किस्में सूचीबद्ध हैं। अंजीर में परागण का तरीका और फूलों का लिंग दोनों के आधार पर चार प्रकार के पौधे पाए जाते हैं। यह वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि अंजीर का फल वास्तव में एक सायकॉनियम होता है . यानी एक बंद पुष्पासन जिसके अंदर सैकड़ों छोटे-छोटे फूल होते हैं।

तालिका 3. अंजीर में चार प्रकार में वर्गीकृत किया जाता हैर:

प्रकार	फूल का प्रकार	परागण की आवश्यकता	फल का प्रकार	उदाहरण
साधारण अंजीर	केवल लंबी शैली वाले स्त्री फूल	नहीं	खाने योग्य	पूना फिग , ब्राउन टर्की
स्मिर्ना प्रकार	केवल छोटी शैली वाले स्त्री फूल	हाँ (कैप्रिफिकेशन)	खाने योग्य	कैलिमिर्ना
सैन पेड्रो प्रकार	दो फसलें - एक बिना परागण, एक परागण से	आंशिक	खाने योग्य	सैन पेड्रो, किंग
कैप्रिफिग या नर अंजीर	नर, छोटी शैली वाले स्त्री फूल	नहीं (पराग दाता)	खाने योग्य नहीं	डोटाटो, रोडिंग

रंग के आधार पर अंजीर को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है-

1. फल हरा या पीला - ड्रियाटिक, कडोटा
2. कांस्य या तांबे के रंग से छायांकित फल- ब्रंसविक
3. फल गहरे बैंगनी या बैंगनी काले रंग के होते हैं - पैट्रिज आँख

तुड़ाई सूचकांक

ताजे अंजीर की तुड़ाई तब करनी चाहिए जब वे नरम हों, गर्दन पर थोड़ा मुरझाए हुए हों और गिर गए हों डंठल के कटे हुए सिरे पर दूधिया लेटेक्स का प्रवाह न हो फल का आकार अचानक बढ़ गया हो और ओस्टियोल खुल गया हो। अंजीर को तने के सिरे पर गर्दन को मोड़कर पेड़ों से हाथ से तोड़ा जाता है। तोड़े गए फलों को एक दिन के लिए छाया में फैला दिया जाता है ताकि लेटेक्स थोड़ा सूख जाए। भारत में एक अंजीर का पेड़ प्रति वर्ष 180 से 360 फल देता है।

ग्रेडिंग

- ♣ अंजीर तोड़ने के बाद, उन्हें सावधानीपूर्वक संग्रहित किया जाता है। रोगग्रस्त और क्षतिग्रस्त अंजीरों को निकाल दिया जाता है।
- ♣ फलों को आकार के आधार पर 50 ग्राम, 40-50 ग्राम और 30-40 ग्राम में वर्गीकृत किया जाता है।

पैकिंग

अंजीर के फलों की पैकिंग 3 परत वाले नालीदार बॉक्स (सीएफबी) कार्टन में की जानी चाहिए जिसमें वेंटिलेशन के लिए 12 छेद हों और कार्टन में 2 परतों में व्यवस्थित करें, प्रत्येक परत में 28 (एक पंक्ति में 7 अंजीर की 4 पंक्तियाँ)। अंजीर के पत्तों का उपयोग गद्दीदार सामग्री के रूप में किया जाता है।

ताजे एवं सूखे फलों की पैकिंग

भंडारण

ताजे अंजीर बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं, इसलिए भंडारण के लिए बहुत अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है और ताजे फलों को 40° से 43°F (4.44°-6.11°C) और 75% सापेक्ष आर्द्रता पर संग्रहीत किया जा सकता है। अंजीर 8 दिनों तक अच्छी स्थिति में रहते हैं, लेकिन भंडारण से निकालने पर इनका शेल्फ लाइफ केवल 1 से 2 दिन का होता है। 50°F (10°C) और 85% सापेक्ष आर्द्रता पर, अंजीर को 21 दिनों से अधिक नहीं रखा जा सकता है और 32° से 35°F (0°-1.67°C) पर संग्रहीत करने पर फल 30 दिनों तक अच्छी स्थिति में रहते हैं। यदि इन्हें पूरा जमा दिया जाए तो इन्हें कई महीनों तक रखा जा सकता है।

निष्कर्ष

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अंजीर ताजे और प्रसंस्कृत दोनों रूपों में बहुत पौष्टिक और स्वादिष्ट फल है, लेकिन लंबे समय तक रखने के लिए पूना और ब्लैक इस्चिया अंजीर जैसी कुछ उन्नत किस्मों की खेती की आवश्यकता है। ताजे फलों की शेल्फ लाइफ बढ़ाने के लिए संशोधित वायुमंडलीय भंडारण, शीत भंडारण और नियंत्रित वायुमंडलीय भंडारण स्थितियों जैसी कुछ उन्नत प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

******

कीटनाशी बना रहे धरती की कोख को बांझ

लेखक परिचय

ललित नारायण सोनू

एम.एस.सी. (उद्यान विज्ञान)

कृषि विभाग, आई आई ए एस टी इंटीग्रल विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत कृषि प्रधान देश है, जहाँ खेती केवल आजीविका का साधन नहीं बल्कि संस्कृति और परंपरा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्राचीन काल से भारतीय कृषि प्रकृति-सम्मत, जैविक और सतत रही है। परंतु हरित क्रांति के बाद खेती को अधिक उत्पादन के लिए रसायनों पर निर्भर बना दिया गया, जिसके गंभीर परिणाम आज स्पष्ट दिख रहे हैं। कीटनाशकों, खरपतवारनाशियों और रासायनिक उर्वरकों की बढ़ती मात्रा से मिट्टी की उर्वरता घट रही है, जलस्रोत प्रदूषित हो रहे हैं और मानव-स्वास्थ्य को बड़े खतरे उत्पन्न हो रहे हैं। यही कारण है कि विशेषज्ञ चेतावनी दे रहे हैं कि धरती की 'कोख' धीरे-धीरे बांझ होती जा रही है।

लगातार बढ़ रहा कीटनाशक उपयोग

भारत में हरित क्रांति से पहले कीटनाशकों का उपयोग सीमित था। और इसका मुख्य उद्देश्य केवल फसलों कोए रोगों और कीटों से बचाना था। परंतु जैसे-जैसे अधिक उत्पादन की चाह बढ़ती गई, वैसे-वैसे कीटनाशकों का उपयोग भी तेजी से बढ़ता गया। उदाहरण-
2023-2024 में, उत्तर प्रदेश में भारत में सबसे अधिक रासायनिक कीटनाशक खपत दर्ज की गई, जिसका कुल उपयोग 11,828.00 मीट्रिक टन (तकनीकी ग्रेड सामग्री) था।

2023-2024 के दौरान, सबसे ज्यादा खपत वाले राज्य, घटते क्रम में, इस तरह हैं, उत्तर प्रदेश (11828.00), महाराष्ट्र (8718.00), तेलंगाना (4920.00), पश्चिम बंगाल (4081.18), हरियाणा (4064.00), पंजाब (5257.00), तमिलनाडु (1970.00), राजस्थान (1898.00), आंध्र प्रदेश (1827.94), गुजरात (1835.00), कर्नाटक (1830.00), छत्तीसगढ़ (1781.00), उड़ीसा (1143.88), बिहार (995.00), मध्य प्रदेश (599.00), केरल (528.92), झारखंड (455.00), हिमाचल प्रदेश (277.32), गोवा (34.81), और उत्तराखंड (78.73)।

यह आँकड़ा इस बात का संकेत है कि किसान रसायनों पर अत्यधिक निर्भर होते जा रहे हैं। और सबसे चिंताजनक बात यह है कि बाजार में अवैध और नकली कीटनाशक भी बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं, जो पर्यावरण और फसलों के लिए और भी विषैले होते हैं।

ISSN: 3049-2211

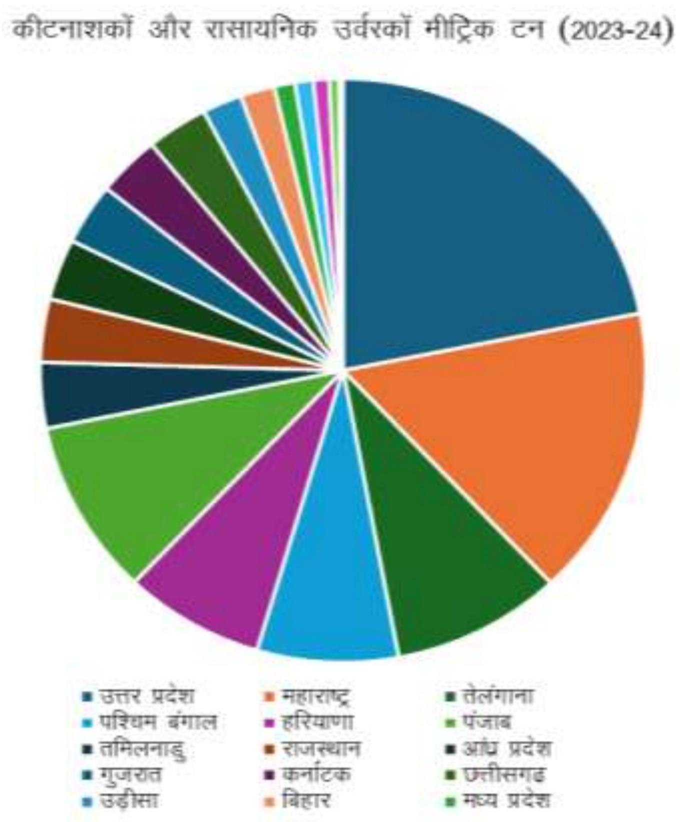

प्रकृति का कीट-नियंत्रण तंत्र नष्ट

प्रकृति के पास अपनी रक्षा प्रणाली होती है जिसे 'बायोलॉजिकल कंट्रोल' कहते हैं। पौधों को खाने वाले कीट और उन्हें खाने वाले परभक्षी कीटए दोनों साथ रहते हैं और संतुलन बनाए रखते हैं। लेकिन रासायनिक कीटनाशकों के कारण यह पूरा प्राकृतिक चक्र टूट गया है। परभक्षी कीट लगातार मर रहे हैं और हानिकारक कीट प्रतिरोधी बनते जा रहे हैं। इससे किसान और अधिक कीटनाशक छिड़कते हैं और यह दुष्चक्र जारी रहता है। आज स्थिति यह है कि मिट्टी की जैविक गतिविधि घट चुकी है खाद्य पदार्थों में रसायनों का अवशेष पाया जा रहा है यहाँ तक कि दूध और भूजल में भी रसायन पहुँच रहे हैं अर्थात, कीटनाशकों ने फसलों को बचाने के बजाय मानव-जीवन को खतरे में डाल दिया है।

यूरिया और रासायनिक उर्वरकों की अति

उर्वरकों का प्रयोग पौधों को पोषक तत्व देने के लिए किया जाता है, लेकिन इनका अत्यधिक उपयोग मिट्टी के लिए जहरीला सिद्ध हो रहा है। विशेषकर यूरिया का दुरुपयोग सबसे ज्यादा देखा जा रहा है। अत्यधिक यूरिया डालने से प्रथम दृष्टि में फसल हरी-भरी तो दिखती है, परंतु दीर्घकाल में इसका बहुत ही दुष्प्रभाव पड़ता हैं। जैसे-

- ✓ नाइट्रोजन चक्र बिगड़ जाता है
- ✓ मिट्टी की संरचना खराब होती है
- ✓ भूजल में नाइट्रेट बढ़ता है
- ✓ लंबे समय में पैदावार घटती है
- ✓ दाने व फल की गुणवत्ता कम हो जाती है।
- ✓ रस चूसक कीट व रोगों का प्रकोप बढ़ता है।
- ✓ फलों/ब्जियों की भंडारण क्षमता घटती है।

मिट्टी का स्वास्थ्य बिगड़ना

मिट्टी सिर्फ रेत, गाद और चिकनी मिट्टी का मिश्रण नहीं बल्कि एक जीवित इकाई है। इसमें केंचुए, बैक्टीरिया, फफूंद, ऐक्टिनोमाइसेट्स और लाभकारी कीड़े रहते हैं, जो जैविक पदार्थों को विघटित कर मिट्टी को पोषक तत्वों से भरते हैं। लेकिन कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग इन सभी जीवों को नष्ट कर देता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और वह धीरे-धीरे निर्जीव हो जाती है अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक का उपयोग करने से मिट्टी पर दुष्प्रभाव।

- ✓ मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरता घटती है।
- ✓ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है
- ✓ मिट्टी सख्त और बंजर बनती है
- ✓ पानी सोखने की क्षमता घटती है
- ✓ मिट्टी का pH असंतुलित हो जाता है (अम्लीय होती है)।
- ✓ मिट्टी की संरचना खराब होती है।

खाद्य सुरक्षा और मानव-स्वास्थ्य पर प्रभाव

कीटनाशकों व रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी के जीव मर जाते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और खाद्य उत्पादन असुरक्षित हो जाता है। रसायनों के अवशेष अनाज, सब्जियों और फलों में प्रवेश कर जाते हैं, जिन्हें खाने से मानव स्वास्थ्य पर सीधे दुष्प्रभाव पड़ते हैं- जैसे हार्मोनल असंतुलन, एलर्जी, तंत्रिका तंत्र की समस्याएँ व दीर्घकालिक बीमारियाँ (कैंसर, पाचन समस्याएँ)।

समाधान क्या है?

धरती को बचाने के लिए निम्न उपाय अत्यंत आवश्यक हैं-

1. जैविक खेती अपनाना

- ✓ गोबर खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद का उपयोग
- ✓ रासायनिक निर्भरता कम

2. एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM)

- ✓ फेरोमोन ट्रैप

- ✓ नीम आधारित कीटनाशक
- ✓ परभक्षी कीट संरक्षण (जैसे लेडीबर्ड बीटल)
- ✓ संतुलित कीटनाशक उपयोग

3. फसल चक्र अपनाना

- ✓ मिट्टी का पोषण बढ़ता है
- ✓ कीट-दबाव कम होता है
- ✓ एक ही खेत में बार-बार एक ही फसल न लगाना

4. मिश्रित खेती और बहुफसली प्रणाली

- ✓ एक ही खेत में दोदृतीन फसलें लगाना
- ✓ कीटों का दबाव कम होता है
- ✓ मिट्टी की जीववैज्ञानिक गतिविधि बढ़ती है

6. जैव उर्वरक (Biofertilizer) का उपयोग

- ✓ राइजोबियम
- ✓ एजोटोबैक्टर
- ✓ ब्लू-ग्रीन एल्गी (BGA)
- ✓ एजोला (Azolla)
- ✓ पी.एस.बी.- फॉस्फेट घोलक बैक्टीरिया (PSB)

5. किसानों को प्रशिक्षण और जागरूकता

- ✓ कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) और विशेषज्ञों द्वारा नियमित प्रशिक्षण
- ✓ सुरक्षित स्प्रे तकनीक
- ✓ रसायनों के दुष्प्रभाव की जानकारी
- ✓ अवैध कीटनाशक पर रोक

निष्कर्ष

कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों का अनियंत्रित उपयोग धरती की कोख को बांझ बना रहा है। मिट्टी, जल, खाद्य और मानव-स्वास्थ्य सभी खतरे में हैं। यदि तुरंत सुधार नहीं किया गया तो आने वाली पीढ़ियों को उर्वर भूमि की जगह प्रदूषित और निष्फल धरती मिल सकती है। इसलिए अब समय आ गया है कि वैज्ञानिक खेती, जैविक पद्धतियों और जिम्मेदार कृषि-व्यवहार को अपनाया जाए, ताकि धरती की उर्वरता और मानव जीवन दोनों सुरक्षित रह सकें।

******

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा ड्रैगन फ्रूट का प्रजनन

अंजली कुमारी झा[1]- पी.एच.डी. शोध छात्र, उत्तर बंगा कृषि विश्वविद्यालय, कूचबिहार, प० बं०
कुमारी काजोल[2] - पी.एच.डी. शोध छात्र, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर
प्रिंस कुमार[3]- पी.एच.डी. शोध छात्र, विश्व भारती विश्वविद्यालय, शांति निकेतन, प० बं०

ड्रैगन फ्रूट (*हाइलोसेरियस एसपीपी.*), जिसे पिटाया के नाम से भी जाना जाता है, कैक्टेसी परिवार से संबंधित एक उष्णकटिबंधीय फल है। इसकी जीवंत उपस्थिति, पोषण संबंधी लाभों और शुष्क जलवायु के अनुकूल होने के कारण इसे व्यापक रूप से उगाया जाता है। स्टेम कटिंग जैसी पारंपरिक प्रसार विधियाँ आम हैं, लेकिन श्रम-गहन और धीमी हो सकती हैं। ऊतक संवर्धन तकनीक रोग-मुक्त, एकसमान और उच्च-गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री के उत्पादन का एक तेज़ और अधिक कुशल साधन प्रदान करती है।

ड्रैगन फ्रूट के प्रसार में ऊतक संवर्धन का महत्व

ऊतक संवर्धन सूक्ष्म प्रसार का एक रूप है जहाँ क्लोन बनाने के लिए छोटे पौधों के ऊतकों को बाँझ परिस्थितियों में संवर्धित किया जाता है। यह तकनीक ड्रैगन फ्रूट के प्रसार में कई लाभ प्रदान करती है:

- **बड़े पैमाने पर उत्पादन:** कम समय में पौधों का तेजी से गुणन।
- **रोग-मुक्त पौधे:** रोगज़नक़-मुक्त और स्वस्थ रोपण सामग्री का उत्पादन।
- **आनुवांशिक एकरूपता:** क्लोनल प्रसार पौधों के बीच आनुवंशिक स्थिरता सुनिश्चित करता है।
- **ऑफ-सीजन प्रवर्धन:** मौसमी बाधाओं के बावजूद साल भर पौधों का उत्पादन संभव बनाता है।

ड्रैगन फ्रूट प्रवर्धन में ऊतक संवर्धन तकनीक

पौधे की सामग्री का चयन

- ऊतक संवर्धन आरंभ करने के लिए स्वस्थ और रोग-मुक्त मातृ पौधों को चुना जाता है।
- शीर्षस्थ प्ररोह युक्तियाँ या अक्षीय कलियाँ अपनी उच्च पुनर्योजी क्षमता के कारण पसंदीदा प्रत्यारोपण हैं।

सतही बंध्यीकरण

- मलबे को हटाने के लिए प्रत्यारोपणों को बहते पानी के नीचे अच्छी तरह से धोया जाता है।

ISSN: 3049-2211

- माइक्रोबियल संदूषण को खत्म करने के लिए 70% इथेनॉल (30 सेकंड) और सोडियम हाइपोक्लोराइट (3-5 मिनट) जैसे एजेंटों का उपयोग करके सतह बंध्यीकरण किया जाता है।

माध्यम की तैयारी

- मुराशिगे और स्कोग (एमएस) माध्यम का आमतौर पर उपयोग किया जाता है, जिसे बेंज़िलामिनोपुरिन (बीएपी) और इंडोल-3-ब्यूटिरिक एसिड (आईबीए) जैसे प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर (पीजीआर) के साथ पूरक किया जाता है।
- माध्यम का pH 5.7-5.8 पर समायोजित किया जाता है और 20 मिनट के लिए 121°C पर ऑटोक्लेव किया जाता है।

टीकाकरण और संवर्धन स्थापना

- निष्फल प्रत्यारोपण को तैयार संवर्धन माध्यम में एसेप्टिक रूप से स्थानांतरित किया जाता है।
- प्ररोह प्रेरण के लिए संस्कृतियों को नियंत्रित स्थितियों (25±2°C, 16-घंटे फोटोपीरियड) के तहत इनक्यूबेट किया जाता है।

प्ररोह गुणन

- 4-6 सप्ताह के बाद, प्रारंभिक प्रत्यारोपण से कई अंकुर विकसित होते हैं।
- प्ररोह प्रसार को बढ़ाने के लिए हर 4-5 सप्ताह में उपसंस्कृति की जाती है।

जड़ प्रेरण

- पुनर्जीवित अंकुरों को ऑक्सिन (IBA या इंडोल-3-एसिटिक एसिड) युक्त जड़ प्रेरण माध्यम में स्थानांतरित किया जाता है।
- समान संवर्धन स्थितियों के तहत 3-4 सप्ताह के भीतर जड़ें प्राप्त की जाती हैं।

अनुकूलन

- जड़ वाले पौधों को संवर्धन माध्यम से सावधानीपूर्वक हटा दिया जाता है और अगर अवशेषों को हटाने के लिए धोया जाता है।
- खेत में स्थानांतरित करने से पहले उन्हें उच्च आर्द्रता वाले ग्रीनहाउस में धीरे-धीरे अनुकूलित किया जाता है।

ड्रैगन फ्रूट टिशू कल्चर में चुनौतियाँ

- **संदूषण:** सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को रोकने के लिए बाँझपन बनाए रखना महत्वपूर्ण है।
- **सोमाक्लोनल भिन्नता:** लंबे समय तक इन विट्रो कल्चर के दौरान आनुवंशिक अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है।
- **अनुकूलन तनाव:** प्राकृतिक परिस्थितियों में संक्रमण के दौरान पौधों को चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

ऊत्तक संबर्द्धन विधि द्वारा तैयार ड्रैगन फ्रूट के पौधे

भविष्य की संभावनाएँ

टिशू कल्चर तकनीक में ड्रैगन फ्रूट के प्रसार को बढ़ाने की अपार संभावनाएँ हैं। प्रोटोकॉल को अनुकूलित करके और चुनौतियों का समाधान करके, वाणिज्यिक पैमाने पर उत्पादन में सुधार किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण न केवल उच्च गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री की बढ़ती मांग को पूरा करता है बल्कि टिकाऊ कृषि प्रथाओं का भी समर्थन करता है। जैसे-जैसे शोध आगे बढ़ेगा, टिशू कल्चर में नवाचार ड्रैगन फ्रूट उत्पादन को बढ़ावा देने, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और वैश्विक बागवानी उद्योग में योगदान देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

निष्कर्ष

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा ड्रैगन फ्रूट का प्रजनन एक प्रभावी, तीव्र एवं आधुनिक तकनीक है, जिसके माध्यम से रोगमुक्त, समान गुणों वाले तथा उच्च गुणवत्ता के पौध तैयार किए जा सकते हैं। पारंपरिक विधियों की तुलना में यह तकनीक समय और स्थान की बचत करती है तथा वर्षभर पौध उत्पादन संभव बनाती है। इस विधि से पौधों की वृद्धि दर अधिक होती है, जिससे बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। ड्रैगन फ्रूट जैसे उच्च मूल्य के फल के लिए ऊतक संवर्धन तकनीक न केवल पौधों की उपलब्धता बढ़ाती है, बल्कि देश में फलोत्पादन क्षेत्र के विस्तार, जैव विविधता संरक्षण और किसानों की आय में वृद्धि के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो रही है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ऊतक संवर्धन विधि ड्रैगन फ्रूट की प्रजनन क्षमता को वैज्ञानिक रूप से सशक्त बनाती है और इसके व्यापक व्यावसायिक उपयोग की अपार संभावनाएँ हैं।

*****

सैन्य सेवा से मधुमक्खी पालन तक – "संजीवनी" सफलता की उड़ान

डॉ. अवधेश कुमार सिंह[1]- विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि प्रसार), कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश

अमित कुमार सिंह[2] - एस.आर.एफ. - एन.आई.सी.आर.ऐ., भा.कृ.अनु.प.- एन.आई.एस.एस.टी., कृषि विज्ञान केन्द्र, भदोही, उत्तर प्रदेश

आशुतोष श्रीवास्तव[3] - प्रक्षेत्र सहायक, कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश

अजय कुमार सिंह, प्रतापगढ़ जिले के कुंडा तहसील के ऐमाजाटूपुर गाँव के निवासी हैं। भारतीय वायुसेना में वर्षों तक देश सेवा करने के बाद वर्ष 2018 में वे सेवानिवृत्त हुए और अपने गाँव लौट आए। सेना से लौटने के बाद उन्होंने अपने जीवन के दूसरे चरण की शुरुआत की, जिसमें उन्होंने नई आजीविका की तलाश शुरू की। अनेक व्यवसायों का अध्ययन करने के बाद भी उन्हें कोई ऐसा विकल्प नहीं मिल रहा था जिसे वे लंबे समय तक स्थायी रूप से अपना सकें। परंतु वैश्विक महामारी कोविड–19 के दौरान एक ऐसा अवसर सामने आया जिसने उनके जीवन की दिशा ही बदल दी।

प्रशिक्षण के माध्यम से अवसर की खोज

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2020 में गरीब कल्याण रोजगार योजना के अंतर्गत कृषि विज्ञान केंद्र (के.वी.के.) प्रतापगढ़ ने उनके गाँव में मधुमक्खी पालन पर 3 दिवसीय प्रशिक्षण आयोजित किया। अजय सिंह ने इस प्रशिक्षण में न केवल रुचि दिखाई बल्कि सक्रिय रूप से भाग लिया। मधुमक्खी पालन के बारे में प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करने के बाद उनमें इस कार्य को आजीविका के रूप में अपनाने की इच्छा प्रबल हो गई। इसी दौरान उन्हें ज्ञात हुआ कि ARYA (ग्रामीण युवाओं को कृषि में आकर्षित करना एवं बनाये रखना) परियोजना के अंतर्गत 18 – 35 उम्र वाले युवाओं को के.वी.के. 21 दिवसीय व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है, जिसमें तकनीकी सहायता के साथ–साथ व्यवसाय स्थापित करने हेतु आवश्यक निवेश भी उपलब्ध कराए जाते हैं। यह जान कर उन्होंने अपने क्षेत्र के 14 युवाओं को साथ लेकर उन्हें के.वी.के. से प्रशिक्षित कराया और उन्ही लोंगो के साथ खुद को भी प्रशिक्षित किया | प्रशिक्षण ने उन्हें न केवल मधुमक्खी पालन की बारीकियाँ समझाई, बल्कि उन्हें व्यवसायिक दृष्टिकोण से सोचने की क्षमता भी प्रदान की। यह

ISSN: 3049-2211

प्रशिक्षण युवाओं के एक मजबूत और समर्पित समूह के निर्माण का आधार बना।

उद्यम की शुरुआत: चुनौतियों के साथ आगे बढ़ते कदम

अक्टूबर 2020 में अजय सिंह और उनके समूह ने मात्र 50 मधुमक्खी बॉक्स से मधुमक्खी पालन का व्यवसाय शुरू किया। शुरुआत आसान नहीं थी।

- वर्षभर फूलों की उपलब्धता कम थी।
- बाजार में शहद का मूल्य बहुत कम मिलता था।
- बिचौलियों की भूमिका अधिक थी, जिससे वास्तविक लाभ कम मिलता था।
- उपकरण, दवाइयाँ और रोग–मुक्त बॉक्स उपलब्ध कराना कठिन था।
- प्रसंस्करण सुविधा न होने के कारण उत्पाद को उचित मूल्य नहीं मिल पा रहा था।

इन सभी चुनौतियों का सामना करते हुए भी उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी और समाधान खोजने की दिशा में काम करते रहे।

नवाचार और सुधार की दिशा में कदम: ब्रांड निर्माण की शुरुआत

के.वी.के. के वैज्ञानिकों से चर्चा और परामर्श के बाद अजय सिंह ने एक बड़ा निर्णय लिया—उन्होंने अपनी स्वयं की कंपनी **सुपरटेक बी फार्म** की स्थापना की। इसके साथ ही उन्होंने अपने शहद के लिए **"संजीवनी"** नाम से ब्रांड पंजीकृत कराया और एफ.एस.एस.ऐ.आई. प्रमाणन प्राप्त किया। ब्रांड बनने के बाद उन्हें बाजार में बेहतर पहचान तो मिलने लगी, परंतु प्रसंस्करण की सुविधा न होने से वे अधिक लाभ अर्जित नहीं कर पा रहे थे। तब उन्होंने के.वी.के. द्वारा उपलब्ध एफ.एस.एस.ऐ.आई. प्रमाणित प्रोसेसिंग और पैकेजिंग सुविधा का लाभ उठाया। प्रसंस्करण के बाद उनके शहद की गुणवत्ता में सुधार आया और बाजार में उनकी उत्पादकता और विश्वसनीयता बढ़ गई। इससे उन्हें स्थानीय और बाहरी बाजारों में बेहतर दाम मिलने लगे।

माइग्रेटरी बीकीपिंग: वर्षभर फ्लोरा उपलब्धता की समस्या का समाधान

प्रतापगढ़ जिले में वर्षभर पर्याप्त फ्लोरा उपलब्ध नहीं रहती, जिससे मधुमक्खियों के लिए अमृत स्रोत की कमी हो जाती थी। इस समस्या का समाधान अजय सिंह ने एक नवाचारी पद्धति—**माइग्रेटरी बीकीपिंग**—के माध्यम से खोजा। उन्होंने मौसम और फ्लोरा के आधार पर अपने बॉक्स अलग–अलग राज्यों में ले जाना शुरू किया।

प्रदेश	फ्लोरा
उत्तर प्रदेश	सरसों, यूकेलिप्टस, शीशम
बिहार	लीची
राजस्थान	सरसों, बबूल
झारखंड	बन तुलसी
पश्चिम बंगाल	विविध वनस्पतियाँ

इससे न केवल उनकी उत्पत्ति बढ़ी, बल्कि उन्होंने **फ्लोरा–विशिष्ट प्रीमियम हनी** का उत्पादन भी शुरू किया, जिसकी बाजार में कीमत सामान्य शहद की तुलना में अधिक मिलती है। यह नवाचार उनके कारोबार का महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ।

मधुमक्खी उत्पाद: आय के नए स्रोत

अजय सिंह और उनकी टीम ने यह समझा कि मधुमक्खी पालन केवल शहद तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके कई अन्य उत्पाद भी आर्थिक रूप से लाभदायक हैं।

ISSN: 3049-2211

(A) शहद (Honey)

शहद प्राकृतिक पोषक तत्वों, विटामिन, खनिज, एंजाइम और अमीनो एसिड से भरपूर एक शक्तिशाली खाद्य पदार्थ है। यह एंटी–बैक्टीरियल, एंटी–इंफ्लेमेटरी और एंटी–ऑक्सीडेंट गुणों से युक्त है। अजय कुमार सिंह अलग अलग फूलों से अलग अलग (शीशम, सफेदा, सरसों, बबूल, लीची और मिक्स) प्रकार की शहद को इकठ्ठा करते है और उसका प्रसंस्करण कर बेचते हैं |

(B) परागकण (Bee Pollen)

बी–पोलन रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में अत्यंत प्रभावी है और इसे प्राकृतिक औषधि के रूप में माना जाता है।

(C) प्रोपोलिस (Propolis)

प्रोपोलिस को "प्राकृतिक एंटीबायोटिक" कहा जाता है। यह ब्लड शुगर नियंत्रण, संक्रमण से सुरक्षा और कैंसर–रोधी गुणों के लिए जाना जाता है।

(D) मधुमोम (Beeswax)

मधुमोम का उपयोग कास्मेटिक्स, मोमबत्ती निर्माण और आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है।

आर्थिक विश्लेषण: सफलता के आंकड़े

मधुमक्खी पालन के विकास के साथ उनकी वार्षिक आय भी बढ़ती गई। उनके द्वारा प्राप्त आय इस प्रकार है—

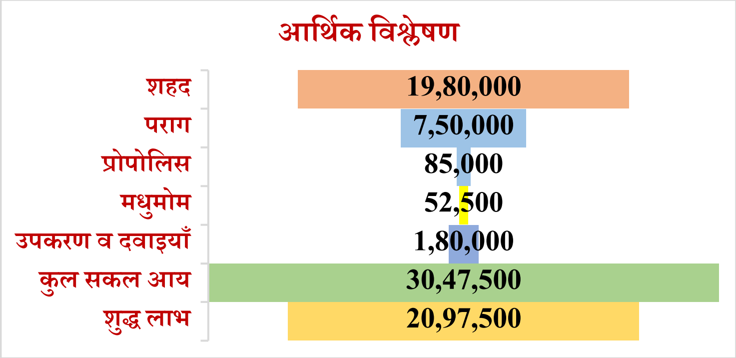

के.वी.के. का योगदान: मार्गदर्शन से सफलता तक

के.वी.के. प्रतापगढ़ ने अजय सिंह की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- तकनीकी प्रशिक्षण
- उद्यम स्थापना में समर्थन
- प्रसंस्करण और पैकेजिंग सुविधा
- विपणन और व्यापार प्रबंधन पर मार्गदर्शन
- प्रचार – प्रसार में नई तकनीक का समावेश

इन सभी पहलुओं ने मिलकर अजय सिंह के व्यवसाय को मजबूत और स्थायी बनाया।

सुपरटेक बी फार्म का व्यावसायिक मॉडल

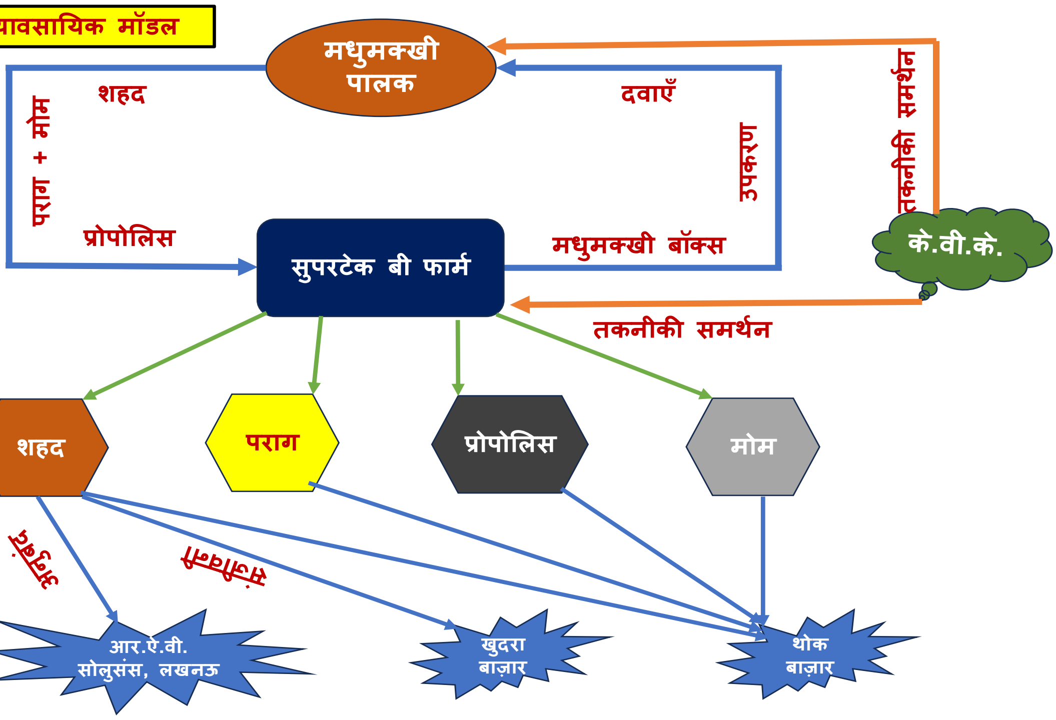

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

अजय सिंह की सफलता ने पूरे क्षेत्र में सकारात्मक प्रभाव डाला।

- 14 युवाओं को प्रत्यक्ष रोजगार
- उपकरण और दवाइयों की स्थानीय उपलब्धता
- किसानों में परागण सेवाओं के प्रति जागरूकता
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वृद्धि
- मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए प्रचार प्रसार

निष्कर्ष:

अजय कुमार सिंह की यह सफलता कहानी केवल उनके व्यक्तिगत उपलब्धि को नहीं दर्शाता, बल्कि ग्रामीण उत्तर प्रदेश में उभरते नए उद्यमशील मॉडल का सशक्त प्रतीक है। वायुसेना से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने जिस साहस और दूरदर्शिता के साथ मधुमक्खी पालन को अपनाया, वह यह दर्शाता है कि सही प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, इच्छाशक्ति और नवाचार मिलकर किस प्रकार एक साधारण किसान या युवा को सफल उद्यमी बना सकते हैं। उनकी यात्रा यह सिद्ध करती है कि माइग्रेटरी बीकीपिंग जैसे नवाचार न सिर्फ उत्पादन क्षमता बढ़ाते हैं, बल्कि उत्पादों में विविधता और गुणवत्ता लाकर बाजार में प्रीमियम मूल्य भी दिलाते हैं। फ्लोरा–विशिष्ट शहद उत्पादन का उनका प्रयास पूरे क्षेत्र में एक नई सोच लेकर आया है, जिससे अन्य युवा भी प्रेरित हो रहे हैं। अजय सिंह का मॉडल ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का बेहतरीन उदाहरण बन चुका है। उनकी कंपनी के माध्यम से स्थानीय युवाओं को रोजगार मिला, ग्रामीण बाजारों में आर्थिक गतिविधि बढ़ी और किसानों में मधुमक्खी परागण के महत्व के प्रति जागरूकता फैली, जिससे कृषि उत्पादकता भी बढ़ने की संभावनाएँ बनीं। यह कहानी यह भी दर्शाती है कि कृषि विज्ञान केंद्र जैसी संस्थाएँ यदि तकनीकी सहयोग और प्रसंस्करण सुविधा प्रदान करें, तो ग्रामीण उद्यमी बड़े स्तर पर बाजार से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। के.वी.के. और किसान के बीच इस तरह की साझेदारी आज ग्रामीण विकास की सबसे मजबूत कड़ी बन सकती है। समग्र रूप से, अजय कुमार सिंह आत्मनिर्भर भारत, कौशल आधारित ग्रामीण रोजगार, और नवाचारी कृषि उद्यमिता का प्रेरक चेहरा बनकर उभरे हैं। उनका सफर यह संदेश देता है कि चुनौतियाँ चाहे कितनी भी बड़ी हों, सही दिशा, दृढ़ निश्चय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़कर गाँव में ही सफल और टिकाऊ व्यवसाय खड़ा किया जा सकता है।

♣♣♣

शून्य बजट प्राकृतिक खेती: आज के समय की मांग

लेखक परिचय

डॉ॰ सुनील कुमार मंडल*
सहायक प्राध्यापक
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, बिहार
डॉ॰ सुरेन्द्र प्रसाद
कीट विज्ञान विभाग, स्नातकोत्तर कृषि महाविद्यालय, डा0 राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि महाविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

विश्व भर में प्राकृतिक खेती के कई प्रभावी मॉडल मौजूद हैं, लेकिन भारत में शून्य बजट प्राकृतिक खेती सबसे लोकप्रिय मॉडल है और आंध्रप्रदेश राज्य में एक जमीनी स्तर का कृषि अंदोल में बदल गया है। यह मॉडल व्यापक, प्राकृतिक और आध्यात्मिक कृषि प्रणाली है जो पद्मश्री सुभाष पालेकर के द्वारा विकसित की गई है और इन्हे देश में शून्य बजट प्राकृतिक खेती के जनक भी कहा जाता है। **"शून्य बजट प्राकृतिक खेती"** तब प्रसिद्ध हुई, जब केन्द्रीय वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने अपने बजट भाषण (वर्ष 2019) में किसानों की आय दोगुनी करने के उपायों के रूप में इस पद्वति का उल्लेख किया था। वर्त्तमान मे प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने व प्रोत्याहित करने के लिए भारत सरकार **"राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन"** योजना के अंतर्गत देश में विभिन्न राज्यों के किसानों को प्रशिक्षण के साथ-साथ वित्तीय सहायता भी प्रदान कर रही है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती एक कृषि पद्वति है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों और किसी अन्य बाहरी आदानों (इनपुट) का उपयोग नहीं किया जाता है और फसलों के उगने एवं उनकी कटाई तक में कोई लागत नहीं आती है अर्थात् खेती की लागत को लगभग शून्य रखा जाता है (किसानों के द्वारा की गई लागत खर्च की भरपाई अंतर फसलों से की जाती है)। शून्य बजट प्राकृतिक खेती मुख्य रूप से भारतीय किसानों के द्वारा स्वयं अपने खेतों में उपलब्ध देशी गाय के गोबर और गोमूत्र से बनाये गये "जीवामृत" "धनजीवामृत" और बीजामृत जैसे जैविक उत्पादों पर निर्भर करती है। इस पद्वति में मल्चिंग (फसल के अवशेषों से जमीन को ढ़कना) और वाफसा (मिट्टी में नमी बनाये रखना) को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे

मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के महत्वपूर्ण बिन्दु:

1. देशी गाय के उत्पाद: इस कृषि प्रणाली में देशी गाय का गोबर, गोमूत्र, चूना और कुछ अन्य प्राकृतिक सामग्रियों का उपयोग करके 'जीवामृत' तरल खाद्य और 'बीजामृत' बीजोपचार जैसे उत्पाद तैयार किये जाते हैं।

2. जैविक सामग्री का उपयोग: खेत में उपलब्ध जैविक पदार्थ (वायोमास) जैसे फसल के अवशेष को मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और मल्चिंग के लिए उपयोग किया जाता है।

3. मिट्टी का स्वास्थ्य: ये तरीके मिट्टी मे सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को बढ़ाते है, जिससे मिट्टी की संरचना और पोषक तत्वों में सुधार होता है।

4. कीट नियंत्रण: नीमास्त्र, अग्नि अस्त्र, दशपर्णीअर्क, बह्मास्त्र जैसे जैविक कीटनाशक का उपयोग कीट नियंत्रण करने के लिए किया जाता है।

5. कम लागत और सिंचाई: बाहरी आदान (इनपुट) और रासायनों की आवश्यकता नहीं होने से खेती की लागत कम हो जाती है। साथ ही मल्चिंग और वाफसा जैसे प्रणालियों से सिंचाई जल की खपत भी कम होती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के मुख्य चार स्तम्भ/घटक:

1. जीवामृत: शून्य बजट खेती का पहला और सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है जीवामृत। यह भारत के देशी गाय की गोबर, गोमूत्र, गुड़, दाल के आटे और मिट्टी से बनाया जाता है। यह मिश्रण एक तरह का प्राकृतिक उर्वरक है, जिसका उपयोग किसान अपने खेतों में करते हैं।

2. बीजामृत: बीजामृत बिना पैसे वाली खेती का दुसरा आधार है। यह तंबाकू, हरि मिर्च और नीम की पत्तियों का मिश्रण है, जिसका उपयोग कीटों एवं रोगों के नियंत्रण के लिए किया जाता है और यह प्राकृतिक रूप से बीजों की सुरक्षा में भी मदद करता है।

3. अच्छादन (मल्चिंग): यह शून्य बजट प्राकृतिक खेती का तीसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ है। मल्चिंग मिट्टी के आवरण की रक्षा करता है, जिससे नमी के संरक्षण के साथ-साथ खेत की जुताई से नुकसान नहीं पहुँचता है।

4. वापसा: वापसा एक ऐसी स्थिति है, जिसमें मिट्टी में पानी और हवा दोनों के अणु मौजूद होते हैं। इससे भूमि में अतिरिक्त सिंचाई जल की जरूरत कम हो जाती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के सिद्धान्त:

- ✓ **शून्य बजट:** रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों और अन्य बाहरी आदानों पर कोई खर्च नहीं किया जाता है।
- ✓ **फसल उत्पादन:** यह मिट्टी की उर्वरा शक्ति और फसल की पैदावार दोनों को बढ़ाता है।
- ✓ **प्राकृतिक आदान:** किसान के द्वारा अपने खेत पर ही जीवामृत, बीजामृत और अन्य प्राकृतिक कीटनाशक (अग्निअस्त्र, नीमास्त्र, दशपर्णी अर्क आदि) तैयार किये जाते हैं।
- ✓ **संवर्धन:** जीवामृत मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधी को बढ़ाता है, जिससे पौधों को पोषक तत्व आसानी से मिलते है और कीटों व रोग से प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है।
- ✓ **मल्चिंग (अच्छादन):** यह मिट्टी की नमी बनाये रखने और खरपतवारों को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- ✓ **मिट्टी का स्वास्थ्य:** यह मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाकर कार्बनिक सामग्रियों को बढ़ाता है और मिट्टी की संरचना में सुधार करता है।
- ✓ **सिद्धांत:** जुताई और निराई-गुड़ाई कम करना, रासायनिक खादों का उपयोग न करना और प्रकृति के आदेशों का पालन करना है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती की विशेषताएँ

शून्य बजट प्राकृतिक खेती की मुख्य विशेषताओं के अंतर्गत में लागत में कमी, देशी गाय के गोबर और गोमूत्र जैसे प्राकृतिक आदानों (इनपुट) का उपयोग रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों से परहेज इत्यादि शामिल है। यह विधि जैविक खेती से अलग है और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती है तथा किसान को कर्ज से मुक्त रखती है।

मुख्य विशेषताएँ:

- ✓ **शून्य लागत:** इस पद्दति में किसान को बाहर से कोई भी आदान (बीज, उर्वरक, कीटनाशक) खरीदने की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए खेती की लागत शून्य हो जाती है।
- ✓ **प्राकृतिक आदान:** खेती के लिए जरूरी चीजें (जीवामृत, धन बीजामृत) खेत में तैयार की जाती है, जो देशी गाय के गोबर और गोमूत्र से बनती है।
- ✓ **रासायन मुक्त:** यह पद्दति पूरी तरह से रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से बचती है।
- ✓ **मल्चिंग:** फसल अपशिष्ट या जैविक सामग्री से मिट्टी को ढ़क दिया जाता है, जिससे मिट्टी की नमी बनी रहती है, खरपतवार कम होते है और मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है।
- ✓ **मृदा वतन (वाफसा):** मल्चिंग और मिट्टी में नमी बनायें रखने से मिट्टी में हवा का संचार बेहतर होता है।

- **किसानों के लिए फायदेमंद:** यह पद्दति न केवल किसानों की लागत को कम करता है, बल्कि मिट्टी की गुणवत्ता और फसल का उत्पादन भी बढ़ता है।
- **प्रकृति के नियमों का पालन:** यह विधि प्रकृति के नियमों का पालन करती है, जिसमें जुताई, मल्चिंग और जैविक आवरण जैसी चीजें शामिल है।

जीरो (शून्य) बजट प्राकृतिक खेती के लाभ:

जीरो बजट फार्मिंग के मुख्य लाभों के अंतर्गत लागत में कमी, मिट्टी की उर्वरता और जल धारण क्षमता में सुधार, रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों पर निर्भरता कम होना शामिल है। यह विधि पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता को बढ़ाती है। रासायन मुक्त एवं पौष्टिक भोजन के उत्पादन को बढ़ावा देती है। इसके अतिरिक्त, यह किसानों को बाहरी आदानों पर निर्भरता कम करके आत्मनिर्भर बनाने में मदद करती है और बेहतर आय प्रदान कर सकती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के फयदे:

- **लागत में कमी:** खेती की लागत कम हो जाती है, क्योंकि किसान देशी गाय के गोबर और गोमूत्र से ही आवश्यक सामग्री बनाते है और बाजार से कुछ भी नहीं खरीदते हैं।
- **मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार:** जीवामृत और मल्चिंग जैसी तकनीकों से मिट्टी की उर्वरता और जलधारण क्षमता बढ़ती है।
- **रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उन्नमूलन:** रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग बंद हो जाता है, जिसमें मिट्टी, भोजन और पानी स्वस्थ रहते हैं।
- **उत्पादकता और गुणवत्ता में वृद्धि:** बेहतर मिट्टी के स्वास्थ्य के कारण लंबे समय में उपज बढ़ती है और उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- **जलवायु परिवर्तन से सहनशीलता:** मिट्टी की संरचना में सुधार होने से फसलें सूखा और बाढ़ जैसी चरम मौसमी घटनाओं का बेहतर सामना कर सकती है।
- **पर्यावरण संरक्षण:** यह पद्दति पयार्वरण के अनुकूल तरीकों को बढ़ावा देती है और जैव विविधता का संरक्षण करती है।
- **किसान सशक्तिकरण:** किसानों की बाह्य आदानों पर निर्भरता कम होती है, जिससे वे अधिक आत्मनिर्भर बनते हैं।
- **स्वास्थ्य लाभ:** रसायन मुक्त और पौष्टिक भोजन का उत्पादन होता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है।
- **शून्य बजट प्राकृतिक खेती का उद्देश्य:** मुख्य उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाना और पर्यावरण को बेहतर बनाना है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता खत्म करके खेती की लागत को कम करना, मिट्टी के स्वास्थ्य और जल संरक्षण में सुधार करना और किसानों के लिए टिकाऊ एवं लाभ को बढ़ावा देना शामिल है।
- **लागत में कमी:** इसका मुख्य लक्ष्य रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों जैसे महंगे आदानों की आवश्यकता को कम करके उत्पादन लागत को लगभग शून्य करना है।
- **किसानों की आय में वृद्धि:** महंगे रासायनों पर निर्भरता नहीं होने से लागत घटती है, जिससे किसानों की शुद्ध आय बढ़ती है।
- **पर्यावरण संरक्षण:** यह मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाती है, जैव विविधता को बढाती है और रासायनिक एवं कीटनाशकों के कारण होने वाले प्रदूषण को कम करती है।
- **स्वास्थ्य में सुधार:** यह रासायनिक कीटनाशकों व खरपतवारनाषकों के बिना पौष्टिक और सुरक्षित खाद्द उत्पादन प्रदान करता है।
- **जल संरक्षण:** प्राकृतिक खेती मे पानी की आवश्यकता कम होती है, जिससे जल संरक्षण में मदद मिलती है।
- **मिट्टी की उर्वरता में सुधार:** यह मिट्टी में सूक्ष्मजीवों को पुर्नजीवित करके उसकी संरचना में सुधार के साथ उर्वरता बढ़ाती है।

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के नुकसान:

शून्य बजट प्राकृतिक खेती के कुछ नुकसानों में अपर्याप्त वैज्ञानिक सत्यापन, कम उपज की संभावना, स्थानीय गायों की नस्लों को पालने में कठिनाई और जैविक प्रमाणीकरण में बाधाएँ शामिल है। इसके साथ ही शून्य बजट प्राकृतिक खेती से देश में खाद्य संकट उत्पन्न होने की चिंता भी व्यक्त की गई है, खासकर तब, जब जनसंख्या की खाद्य और पोषण संबंधी जरूरते बढ़ रही है। इस पद्दति के कुछ नुकसानों का उल्लेख निम्न वर्णित है।

- **वैज्ञानिक सत्यापन की कमी:** वैज्ञानिक समुदाय के द्वारा शून्य बजट प्राकृतिक खेती की तकनीकों को अभी तक पुरी तरह से स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि इनमें से कई वैज्ञानिक आधार कमजोर है।
- **कम फसल उत्पादन:** कुछ अध्ययनों से पता चला है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती में फसल उत्पादन और उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, जिससे संभावित रूप से देश में खाद्द संकट पैदा हो सकता है।

ISSN: 3049-2211

- **स्थानीय नस्लों की गाय के उपलब्धता में कमी:** इस खेती की पद्दति के लिए स्थानीय देशी गायों की आवश्यकता होती है, जिनकी वर्त्तमान में उपयोग की जाने वाली गायों की तुलना में देखभाल करना अधिक कठिन हो सकता है।
- **जैविक प्रमाणीकरण में बाधा:** शून्य बजट प्राकृतिक खेती से उगायें गये उत्पादों के लिए जैविक प्रमाणीकरण प्राप्त करना एक और चुनौती हो सकती है, जिससे जैविक ब्रांडो के लिए उत्पाद बेचना मुश्किल हो सकता है।
- **खाद्य सुरक्षा पर प्रभाव:** कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि शून्य बजट प्राकृतिक खेती के व्यापक विस्तार से राष्ट्रीय खाद्द सुरक्षा पर असर पड़ सकता है, क्योंकि इससे फसल की पैदावार पर नाकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।
- **पोषक तत्वों की कमी:** एक चिंता यह भी है कि केवल नाइट्रोजन को छोड़कर, मिट्टी में अन्य पोषक तत्वों की कमी हो सकती है, जो शून्य बजट प्राकृतिक खेती के अत्यधिक उपयोग से लंबी अवधि में मिट्टी को कमजोर कर सकता है।

निष्कर्ष

शून्य बजट प्राकृतिक खेती (जेवीएनएफ) किसानों को रासायन-मुक्त खेती करने की एक पद्दति प्रदान करती है, जो मिट्टी की उर्वरता और जैव विविधता को बढ़ाती है। यह प्रणाली बाजार से महंगे आदानों (इनपुट) को खरीदने की आवश्यकता को समाप्त करती है, जिसमे लागत शून्य हो जाती है। शून्य बजट प्राकृतिक खेती पारंपरीक रासायनिक खेती की तुलना में कर्ज का बड़ा बोझ कम करने, बेहतर फसल स्वास्थ्य और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन प्राप्त करने में मदद करती है।

♣♣♣

प्राकृतिक खेती से बदलती ग्रामीण महिलाओं की तकदीर

कृषक महिलाएँ - भारत की अदृश्य रीढ़

भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की नींव में महिलाओं का योगदान केंद्रीय और अपरिहार्य है। वे न केवल खेतों में बीज बोने, सिंचाई करने, कटाई और निराई जैसे कठिन कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं, बल्कि पशुपालन, बीज संरक्षण और खाद्य प्रसंस्करण जैसे कृषि से जुड़े हर पहलू को भी संभालती हैं। उनके बिना खेती का हर काम अधूरा है, फिर भी उनका श्रम और योगदान अक्सर अदृश्य और उपेक्षित रहता है। यह एक कड़वा सच है कि भारतीय कृषि कार्यबल में एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने के बावजूद, महिलाएं सदियों से कई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रही हैं।

इन चुनौतियों में सबसे प्रमुख है भूमि स्वामित्व का अभाव। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार, महिलाओं के पास कृषि भूमि का मालिकाना हक केवल 8.3% है, जबकि कृषि जनगणना के मुताबिक यह आंकड़ा 14% और कुछ अध्ययनों में तो 2% तक ही है। भूमि स्वामित्व की कमी के कारण, उनकी संस्थागत ऋण, तकनीकी सहायता और सरकारी योजनाओं तक पहुँच सीमित हो जाती है। वे कृषि उत्पादन पर कोई कानूनी दावा नहीं कर सकतीं, न ही उच्च मजदूरी की मांग कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, महिला किसानों पर दोहरी जिम्मेदारी का अत्यधिक बोझ होता है। वे एक साथ खेती की जिम्मेदारियों, घरेलू कामकाज और बच्चों की देखभाल करती हैं, जिससे उन्हें शारीरिक थकावट और समय की कमी का सामना करना पड़ता है। उनका योगदान अक्सर अवैतनिक और एक श्रमिक या पुरुष सहायक के रूप में ही माना जाता है, जिससे उनके श्रम का वास्तविक मूल्य कभी नहीं आंका जाता।

इन गहन चुनौतियों के बीच, प्राकृतिक खेती एक आशा की किरण बनकर उभरी है, जो इन पारंपरिक समस्याओं को दूर करने का एक स्थायी और समग्र समाधान प्रस्तुत करती है। यह केवल एक कृषि पद्धति नहीं, बल्कि एक सामाजिक और आर्थिक बदलाव का माध्यम है जो महिलाओं को सशक्त, आत्मनिर्भर और अपने समुदाय की नेता बनने का अवसर प्रदान करता है।

लेखक परिचय

विवेक सिंह
साहेब गरेन*
एम.एस.सी. स्कालर
(कृषि प्रसार)
केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, इम्फाल

प्राकृतिक खेती क्या है?

एक सरल परिचय प्राकृतिक खेती, जिसे 'शून्य बजट प्राकृतिक खेती' **(Zero Budget Natural Farming - ZBNF)** भी कहा जाता है, एक ऐसी कृषि पद्धति है जो रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और अन्य बाहरी इनपुट पर निर्भर नहीं करती है। यह प्रकृति में आसानी से उपलब्ध होने वाले प्राकृतिक तत्वों और जीवाणुओं के उपयोग पर जोर देती है। यह पद्धति पर्यावरण के अनुकूल है, फसलों की लागत कम करती है, और मिट्टी की गुणवत्ता को बहाल करती है। जापानी किसान और दार्शनिक मासानोबू फुकुओका ने अपनी पुस्तक 'द वन-स्ट्रॉ रेवोल्यूशन' में इस पद्धति को लोकप्रिय बनाया, जिसमें उन्होंने 'कुछ भी न करने' की सलाह दी है, जैसे कि जुताई न करना, गुड़ाई न करना, उर्वरक न डालना और निराई न करना।

यह पद्धति रासायनिक और जैविक खेती दोनों से भिन्न है। रासायनिक खेती अधिकतम उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करती है, जिससे पर्यावरण को गंभीर नुकसान होता है और किसानों की लागत बढ़ती है। वहीं, जैविक खेती रसायनों को प्रतिबंधित करती है, लेकिन इसमें जैविक खाद (जैसे गोबर की खाद) का उपयोग होता है और जुताई, निराई जैसी बुनियादी कृषि गतिविधियां आवश्यक होती हैं। इसके विपरीत, प्राकृतिक खेती प्रकृति के साथ तालमेल बिठाने पर केंद्रित है, जहाँ मिट्टी की जुताई भी नहीं की जाती और लागत लगभग शून्य हो जाती है। यह पद्धति एक दार्शनिक बदलाव का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें किसान प्रकृति के सेवक के रूप में काम करता है, बजाय इसके कि वह उसे नियंत्रित करने की कोशिश करे। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से महिला किसानों के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह पारंपरिक कृषि के भारी शारीरिक श्रम (जैसे जुताई, निराई और गुड़ाई) को काफी कम कर देता है, जिससे उनके दोहरे कार्यभार में राहत मिलती है।

इस पद्धति के चार मुख्य स्तंभ हैं, जिन्हें सुभाष पालेकर के दर्शन के आधार पर विकसित किया गया है:

जीवामृत: यह एक तरल मिश्रण है जो स्थानीय गाय के गोबर, गोमूत्र, गुड़, दाल के आटे और मिट्टी से तैयार किया जाता है। यह मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या को कई गुना बढ़ाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता स्वाभाविक रूप से बढ़ती है और पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं।

बीजामृत: यह बीजों को बोने से पहले उपचारित करने के लिए उपयोग किया जाने वाला एक घोल है। बीजों को बीजामृत से उपचारित करने से उनकी अंकुरण दर और रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जिससे फसल की सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

वाफसा: इस सिद्धांत में सिंचाई के बजाय मिट्टी में नमी और वायु के संतुलन पर जोर दिया जाता है। प्राकृतिक खेती में, पौधों को बढ़ने के लिए अत्यधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वे वाफसा की स्थिति में मिट्टी में मौजूद नमी और हवा के अणुओं की मदद से विकसित हो सकते हैं। इससे पानी की बचत होती है और जड़ें गलने से बचती हैं।

आच्छादन (मल्चिंग): इस प्रक्रिया में मिट्टी को फसल के अवशेषों, पुआल या अन्य सामग्री से ढका जाता है। आच्छादन मिट्टी की नमी को 70% तक बनाए रखता है, खरपतवार की वृद्धि को रोकता है और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है।

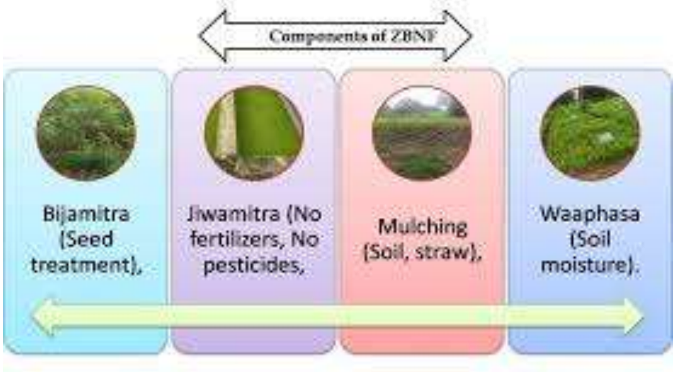

सशक्तिकरण का मार्ग:

प्राकृतिक खेती से महिलाओं के जीवन में बदलाव प्राकृतिक खेती महिलाओं के लिए सिर्फ एक कृषि तकनीक नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और स्वास्थ्य संबंधी सशक्तिकरण का एक समग्र माध्यम बन गई है।

आर्थिक सशक्तीकरण प्राकृतिक खेती का सबसे बड़ा लाभ लागत में भारी कमी है। बाहरी इनपुट जैसे रासायनिक उर्वरक और कीटनाशकों का उपयोग न करने से इन पर होने वाला खर्च लगभग शून्य हो जाता है। यह सीधे तौर पर किसान की शुद्ध आय में वृद्धि करता है। उदाहरण के लिए, एक किसान जो रासायनिक खेती में ₹17,000 की लागत से ₹3.5 लाख कमाता था, प्राकृतिक खेती में केवल ₹1,000 खर्च कर ₹4 लाख की आय अर्जित कर रहा है। इसी तरह, सेब बागान में, जहां पहले रसायनों पर ₹70,000 तक खर्च होता था, अब वह लागत ₹5,000 रह गई है, जबकि उत्पादन दोगुना हो गया है।

यह लागत में कमी सिर्फ एक आर्थिक आंकड़ा नहीं है, बल्कि इसका एक गहरा सामाजिक प्रभाव है। यह महिला किसानों को ऋण पर निर्भरता से मुक्ति दिलाती है। पारंपरिक कृषि में, महिलाएं भूमि स्वामित्व के अभाव के कारण संस्थागत ऋण तक पहुँच नहीं बना पाती हैं।

ISSN: 3049-2211

प्राकृतिक खेती की कम लागत इस बाधा को दरकिनार कर देती है, जिससे वे ऋण मुक्त जीवन जी पाती हैं और अपनी मेहनत पर आत्मनिर्भर हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त, महिला किसान पारंपरिक फसलों के अलावा, विविध आय स्रोतों का सृजन कर रही हैं। वे प्राकृतिक उत्पादों का प्रसंस्करण (अचार, पापड़) और पशुपालन (गाय, बकरी, मुर्गी पालन) करके अतिरिक्त आय अर्जित कर रही हैं, जिससे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत हो रही है।

सामाजिक और निर्णय लेने का सशक्तीकरण

जब महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होती हैं, तो उनका आत्मविश्वास और निर्णय लेने की शक्ति स्वाभाविक रूप से बढ़ती है। वे अब परिवार और समुदाय के निर्णयों में सक्रिय भागीदारी निभाती हैं, जिससे वे केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि "परिवर्तन की संवाहक" बन जाती हैं। पारंपरिक योजनाओं में महिलाएं अक्सर केवल वित्तीय सहायता प्राप्त करती हैं, लेकिन प्राकृतिक खेती उन्हें अपने ज्ञान और श्रम के माध्यम से स्वावलंबी बनाती है। यह उन्हें दूसरों को प्रेरित करने और प्रशिक्षित करने की भूमिका में लाती है, जिससे वे समुदाय की नेता बन जाती हैं।

महिला नेतृत्व वाले स्वयं सहायता समूह **(SHGs)** इस सशक्तीकरण का एक शक्तिशाली उदाहरण हैं। इन समूहों के माध्यम से, महिलाएं एकजुट होती हैं, ज्ञान और अनुभव साझा करती हैं, और सामूहिक रूप से अपने उत्पादों का विपणन और प्रसंस्करण करती हैं। यह उनकी सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ाता है और बिचौलियों पर उनकी निर्भरता को कम करता है।

स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार:

प्राकृतिक खेती महिलाओं और उनके परिवारों के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के सीधे संपर्क से मुक्त होने के कारण, उनके स्वास्थ्य जोखिम कम हो जाते हैं। यह विशेष रूप से उन महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण है जो लंबे समय तक खेतों में काम करती हैं। इसके अलावा, प्राकृतिक तरीकों से उगाए गए पौष्टिक भोजन के सेवन से पूरे परिवार के पोषण स्तर में सुधार होता है। ओडिशा में हुए एक अध्ययन से पता चला है कि 52% महिलाएं कुपोषण की शिकार हैं, जो उनके समग्र स्वास्थ्य के लिए एक बड़ी चुनौती है। प्राकृतिक खेती के माध्यम से उगाए गए स्वस्थ और पौष्टिक खाद्य पदार्थ इस समस्या को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

प्रेरणादायक कहानियाँ

प्रकृति से जुड़ी सफल महिलाएँ प्राकृतिक खेती के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की कहानी सिर्फ आंकड़ों तक सीमित नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन की सफलताओं में भी परिलक्षित होती है।

मुनिया देवी, झारखंड: झारखंड के चतरा जिले की एक साधारण किसान, मुनिया देवी ने 'आत्मा' परियोजना के माध्यम से प्राकृतिक खेती का प्रशिक्षण प्राप्त किया। लागत के अनुपात में कम लाभ पाने से जूझ रहीं मुनिया देवी ने पशुपालन (मुर्गी, बकरी, गाय) और विविध फसलों को अपनाकर अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि की। वे अब एक प्रगतिशील महिला किसान के रूप में पहचानी जाती हैं।

ईशा डोलमा और छेती, हिमाचल प्रदेश: हिमाचल प्रदेश की स्पीति घाटी के लिदा गांव की इन दो महिला किसानों ने रासायनिक खेती को त्याग कर प्राकृतिक खेती शुरू की। उनके प्रयासों से पूरे गांव की खेती की दिशा बदल गई। उन्होंने देसी खाद और जीवामृत का उपयोग करके मटर, आलू, गोभी और सेब जैसी फसलें उगायीं, जिससे उनकी सालाना

आमदनी ₹4-5 लाख तक पहुंच गई। उनकी यह पहल ग्रामीण महिला सशक्तिकरण का एक जीता-जागता उदाहरण बन गई है।

चंद्रेश कुमारी और सुषमा ठाकुर, हिमाचल प्रदेश: हिमाचल प्रदेश की ही चंद्रेश कुमारी और उनके समूह की 20 अन्य महिलाएं 2018 से प्राकृतिक खेती कर रही हैं। वे गेहूं, आलू, प्याज और लहसुन जैसी फसलें उगाकर आत्मनिर्भर बन रही हैं। इसी राज्य की एक अन्य महिला किसान, सुषमा ठाकुर ने बताया कि प्राकृतिक खेती अपनाने के बाद उन्हें खाद और दवाइयों पर खर्च होने वाले ₹12-15 हजार से छुटकारा मिल गया, और उन्होंने एक छोटे से पॉलीहाउस से ₹20,000 की कमाई की। ये कहानियां दर्शाती हैं कि प्राकृतिक खेती न केवल बड़े पैमाने पर, बल्कि छोटे और सीमांत किसानों के लिए भी अत्यधिक लाभदायक है।

लीना जी, हिमाचल प्रदेश: लीना जी ने प्राकृतिक खेती को सिर्फ अपने तक सीमित नहीं रखा। वह अब गांव-गांव जाकर अन्य महिलाओं को इस पद्धति का प्रशिक्षण देती हैं। वह पुराने और पौष्टिक अनाजों के संरक्षण पर भी जोर देती हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लीना जी की कहानी इस बात का प्रमाण है कि महिलाएं आर्थिक लाभ के अलावा ज्ञान और नेतृत्व के केंद्र में भी आ रही हैं।

सरकारी पहल और आगे की राह भारत सरकार ने कृषि में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचानते हुए उन्हें सशक्त बनाने के लिए कई पहलें शुरू की हैं।

महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना (MKSP):

यह पहल महिला किसानों को एक 'किसान' के रूप में पहचान देती है और उनकी क्षमता को बढ़ाने पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य निर्धनतम परिवारों तक पहुँच बनाना और कृषि संबंधी स्थायी तरीकों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाना है।

कृषि सखी योजना: यह योजना एक क्रांतिकारी कदम है। इसके तहत, महिला किसानों को 'पैरा-एक्सटेंशन वर्कर' के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। इस प्रशिक्षण के बाद, वे अन्य किसानों को मार्गदर्शन और सहायता प्रदान कर सकती हैं, जिससे वे अपनी पारंपरिक भूमिका से एक पेशेवर और ज्ञान-आधारित भूमिका में आ जाती हैं। यह उन्हें प्रति वर्ष ₹60,000 से ₹80,000 तक की अतिरिक्त आय अर्जित करने का अवसर देता है। यह मॉडल सिर्फ वित्तीय सहायता प्रदान करने से परे जाकर, महिलाओं को एक नई सामाजिक पहचान और नेतृत्व की भूमिका देता है।

अन्य योजनाएं: प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना (PM-Kisan) के तहत 3 करोड़ से अधिक महिला किसानों को ₹53,600 करोड़ से अधिक की राशि सीधे उनके बैंक खातों में दी गई है। इसके अलावा, सरकार विभिन्न योजनाओं में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अधिक सब्सिडी और वित्तीय सहायता प्रदान करती है, जैसे कि कृषि उपकरणों की खरीद पर।

चुनौतियाँ और आगे की राह

हालांकि, प्राकृतिक खेती को अपनाने वाली महिलाओं के सामने अभी भी कुछ चुनौतियाँ हैं। सबसे बड़ी चुनौती प्राकृतिक उत्पादों के लिए बाजार तक सीमित पहुँच और प्रोत्साहन की कमी है। महंगे जैविक प्रमाणीकरण और विश्वसनीय आपूर्ति श्रृंखला की कमी इन उत्पादों को रासायनिक रूप से उगाए गए उत्पादों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में मुश्किल पैदा करती है। इन चुनौतियों को दूर करने के लिए, निम्नलिखित कदम आवश्यक हैं:

सामूहिक विपणन: महिला स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) को मजबूत करना ताकि वे सामूहिक रूप से अपने उत्पादों का प्रसंस्करण और विपणन कर सकें।

तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण: कृषि सखी जैसे कार्यक्रमों का विस्तार करना और महिलाओं के अनुकूल कृषि उपकरणों को बढ़ावा देना ताकि उनके शारीरिक श्रम को कम किया जा सके।

नीतिगत बदलाव: महिलाओं के लिए भूमि स्वामित्व अधिकारों को मजबूत करने वाले कानून और नीतियों को लागू करना ताकि वे ऋण और अन्य संसाधनों तक पहुँच बना सके

निष्कर्ष:

आत्मनिर्भरता की ओर एक स्थायी कदम प्राकृतिक खेती केवल एक कृषि पद्धति नहीं, बल्कि एक समग्र विकास का माध्यम है। यह महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त करती है, उन्हें सामाजिक स्वतंत्रता और निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है, और उनके तथा उनके परिवार के स्वास्थ्य में सुधार करती है। यह उन्हें ऋण और रसायनों की गुलामी से मुक्त कर एक आत्मनिर्भर जीवन की ओर ले जाती है।

महिलाएं प्राकृतिक खेती के माध्यम से न केवल अपने खेतों को विषमुक्त कर रही हैं, बल्कि अपने जीवन को भी सशक्त बना रही हैं। वे अब सिर्फ खेती का काम करने वाली नहीं, बल्कि धरती की रक्षक, समुदाय की नेता और अपने परिवार व समाज के लिए आत्मनिर्भरता का प्रतीक बन रही हैं। प्राकृतिक खेती उनके लिए सिर्फ एक पेशा नहीं, बल्कि एक स्थायी और सम्मानजनक जीवनशैली है।

♣♣♣

ट्राइकोडर्मा का पौध रोग प्रबंधन में योगदान

[1]**महिमा कुमारी पाण्डेय-** कृषि छात्रा, (बी.एस.सी. ए ग्रीकल्चर)
[2]**डॉ प्रदीप कुमार वर्मा-** सहायक प्राध्यापक
कृषि विभाग, के. वी. एस. सी. ओ. एस , स्वाामी विवेकानंद सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

ट्राइकोडर्मा एक अत्यंत उपयोगी एवं लाभकारी फफूंद है, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी, जैवपदार्थों तथा पौधों की जड़ों के आसपास पाई जाती है। यह ऐस्किोमाईसीट्स वर्ग से संबंधित है तथा कृषि में जैव-नियंत्रक (Biocontrol agent) के रूप में व्यापक रूप से प्रयोग की जाती है। ट्राइकोडर्मा मुख्यतः मृदा एवं बीज जन्य रोगों के नियंत्रण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ट्राइकोडर्मा की कई प्रजातियाँ कृषि के लिए उपयोगी मानी जाती हैं, जिनमें *Trichoderma viride*, *T. harzianum*, *T. asperellum* तथा *T. hamatum* प्रमुख हैं। ये प्रजातियाँ विभिन्न फसलों में रोगकारक फफूंद जैसे *Fusarium*, *Rhizoctonia*, *Pythium*, *Sclerotium* एवं *Phytophthora* के प्रभावी नियंत्रण में सहायक हैं। ट्राइकोडर्मा का कार्य-तन्त्र बहुआयामी है। यह रोगकारक फफूंद पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण करता है, जिसे मायकोपैरासिटिजम (Mycoparasitism) कहते हैं। इस प्रक्रिया में ट्राइकोडर्मा रोगकारक फफूंद के माईसेलियम को लपेटकर एंजाइमों की सहायता से उसे नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त यह प्रतिजैविक पदार्थों का स्राव करता है, जिससे रोगाणुओं की वृद्धि रूक जाती है। साथ ही यह पोषक तत्वों एवं स्थान के लिए रोगकारकों से प्रतिस्पर्धा कर उन्हें कमजोर बना देता है। ट्राइकोडर्मा केवल रोग नियंत्रण में ही सहायक नहीं है, बल्कि यह पौधों की वृद्धि को भी प्रोत्साहित करता है। यह पौधों में वृद्धि हॉर्मोन जैसे ऑक्सीन एवं जाबरेलिन का उत्पादन कर जड़ों के विकास, अंकुरण एवं पौधों की कुल वृद्धि में वृद्धि करता है। साथ ही यह पौधों की प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक क्षमता को सक्रिय करता है, जिससे पौधे विभिन्न रोगों के प्रति अधिक सहनशील बन जाते हैं। कृषि में ट्राइकोडर्मा का उपयोग बीज उपचार, मृदा उपचार एवं नर्सरी प्रबंधन में किया जाता है। यह रासायनिक फफूंदनाशकों का सुरक्षित एवं पर्यावरण-अनुकूल विकल्प है। जैव कृषि एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली में ट्राइकोडर्मा का विशेष महत्व है। इस प्रकार ट्राइकोडर्मा आधुनिक कृषि में एक प्रभावी,

ISSN: 3049-2211

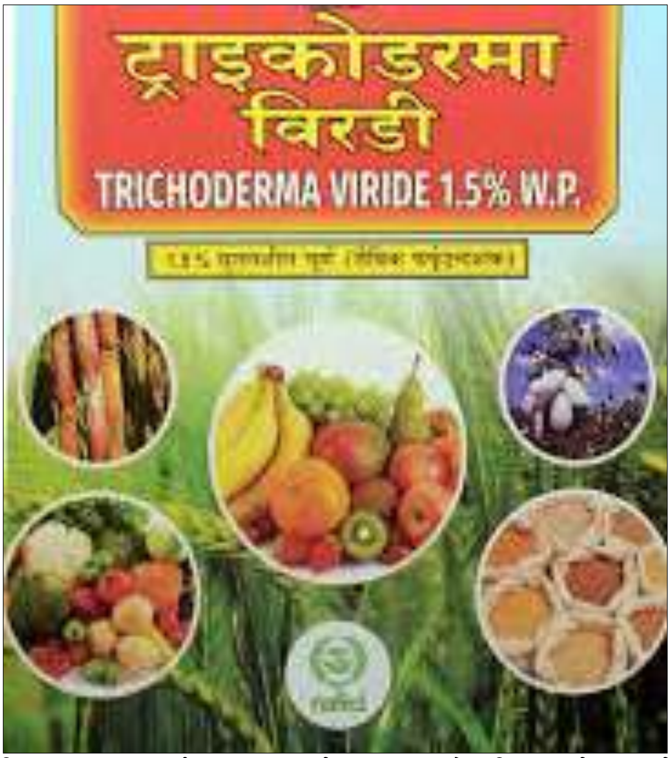

किफायती एवं पर्यावरण-संरक्षण के अनुकूल जैव-नियंत्रक के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

ट्राइकोडर्मा के उपयोग की विधि

ट्राइकोडर्मा एक लाभकारी जैव-नियंत्रक फफूंद है, जिसका उपयोग कृषि में पौध रोगों के प्रभावी प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य सुधार एवं फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए किया जाता है। ट्राइकोडर्मा का सही समय, मात्रा एवं विधि से प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है, तब ही इसके पूर्ण लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। नीचे ट्राइकोडर्मा के उपयोग की विभिन्न विधियों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

1. बीज उपचार द्वारा उपयोग

बीज जन्य रोगों के नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा का बीज उपचार सब से सरल एवं प्रभावी विधि है। इसके अंतर्गत 4 से 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति किलोग्राम बीज की दर से लिया जाता है। सबसे पहले बीजों को हल्का गीला कर लें, फिर निर्धारित मात्रा में ट्राइकोडर्मा मिलाकर बीजों पर समान रूप से लेपित करें। उपचार किए गए बीजों को छाया में सुखाकर तत्काल बुवाई करें। इस विधि से अंकुरण अच्छा होता है तथा डाम्पोग ऑफ, जड़ सड़न एवं उकता रोग जैसे रोगों से सुरक्षा मिलती है।

2. मृदा उपचार द्वारा उपयोग

मृदा जन्य रोगों के प्रबंधन के लिए ट्राइकोडर्मा का मृदा उपचार अत्यंत लाभकारी होता है। इसके लिए 2.5 से 5 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा को 50 से 100 किलोग्राम अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट में मिलाकर 7 से 10 दिन तक छाया में ढक कर रखें। इस मिश्रण को बुवाई या रोपाई से पहले खेत में समान रूप से फैलाकर मिट्टी में मिला दें। इससे मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्म जीव का विकास होता है एवं रोगकारक फफूंद का दमन होता है।

3. पौध या जड़ उपचार

सब्जी, धान, फल एवं पुष्प फसलों की नर्सरी या रोपाई के समय ट्राइकोडर्मा का जड़ उपचार बहुत लाभकारी होता है। इस के लिए 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा को 1 लीटर पानी में घोलें तथा पौधों की जड़ों को 20 से 30 मिनट तक इस घोल में डुबाकर रखें। उसके बाद पौधों की रोपाई करें। इस विधि से पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में होने वाले मृदा जन्य रोगों से सुरक्षा मिलती है।

4. नर्सरी में उपयोग

नर्सरी में रोग नियंत्रण के लिए 5 से 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति वर्ग मीटर की दर से मिट्टी में मिलाया जाता है। इससे डाम्पोग ऑफ रोग की रोकथाम होती है एवं स्वस्थ पौध तैयार होती है।

5. मृदा को भिगोना

खंड़ी फसल में जड़ एवं तना सड़न रोग की स्थिति में 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति लीटर पानी में घोलकर पौधों की जड़ के पास मिट्टी में डालें। यह विधि विशेष रूप से सब्जी एवं बागवानी फसलों में प्रभावी होती है।

सावधानियाँ

ट्राइकोडर्मा को रासायनिक फफूंदनाशकों के साथ न मिलाएं। इसे ठंडी एवं छाया दृश्य स्थान पर रखें। रासायनिक दवाओं के प्रयोग के कम से कम 5 से 7 दिन बाद ही ट्राइकोडर्मा का उपयोग करें।

निष्कर्ष

ट्राइकोडर्मा का वैज्ञानिक एवं सही विधि से प्रयोग करने पर फसलों में रोगों का प्रभावी नियंत्रण होता है, उत्पादन बढ़ता है तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। यह टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि के लिए अत्यंत उपयोगी जैव-उपाय है।

♣♣♣

डिजिटल कृषि सलाह सेवाओं का किसानों के ज्ञान, खेती के तरीकों और नई तकनीक अपनाने पर असर

[1]**डॉ. पतिराम-** सहायक अध्यापक, कृषि प्रसार, भवदीय एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट सीवार, सोहावल, अयोध्या (उ. प्र.)
[2]**डॉ. जगतपाल-** सहायक प्राध्यापक, कृषि विभाग , क्वांटम विश्वविद्यालय रूड़की , उत्तराखंड

भारत में कृषि देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जिसमें लगभग 54% आबादी कृषि पर निर्भर है। कृषि विस्तार का उद्देश्य वैज्ञानिक ज्ञान को किसानों तक पहुँचाना, उनके निर्णयों को बेहतर बनाना तथा उत्पादकता बढ़ाना है। हालांकि परंपरागत प्रसार (field visits, training camps, KVK/प्रशिक्षण) महत्वपूर्ण हैं, उनमें अक्सर समय-सीमा, संसाधन, पहुँच और वैशिष्ट्य अनुरूप सलाह की कमी रही है। इस बाधा को दूर करने के लिए डिजिटल कृषि सलाह सेवाएँ (Digital Agricultural Advisory Services) एक स्वचालित, तेज़ और सस्ता माध्यम बनकर उभरी हैं। ये सेवाएँ ICT (Information & Communication Technologies: मोबाइल, इंटरनेट, IVR, वीडियो, चैटबोट आदि) का उपयोग कर किसानों तक कृषि ज्ञान का प्रवाह बढ़ाती हैं। शोध और प्रायोगिक प्रमाण बताते हैं कि डिजिटल उपकरण कृषि ज्ञान, व्यवहार तथा तकनीक अपनाने पर सकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं। डिजिटल कृषि सलाह का लक्ष्य केवल सूचना देना नहीं है, बल्कि समय-सीमित, संदर्भ-विशेष निर्णय समर्थन देना भी है ताकि किसान की खेती अधिक सतत, लाभकारी और जोखिम-रोधी बने।

डिजिटल कृषि सलाह सेवाओं का स्वरूप और भारत में नीति-परिप्रेक्ष्य

डिजिटल कृषि सलाह सेवाओं में निम्न प्रमुख घटक शामिल हैं:

- **मोबाइल-आधारित सेवाएँ:** SMS, IVR कॉल, व्हाट्सऐप अपडेट, कृषि ऐप।
- **वेब-प्लेटफॉर्म और पोर्टल:** जानकारी, वीडियो, मार्किट रेट, मौसम आदि।
- **AI/डेटा-विश्लेषण सेवाएँ:** मौसम-संदेश, खेत-स्थानीय सिफारिशें, चैटबोट।
- **इंटीग्रेटेड डिजिटल इकोसिस्टम:** कृषि, बीमा, बाजार, बीज, सिंचाई और लॉजिस्टिक्स से जुड़ी सेवाएँ।

किसानों के ज्ञान पर डिजिटल सलाह सेवाओं का प्रभाव

किसानों के कृषि-ज्ञान पर डिजिटल सेवाओं के प्रभाव को समझने के लिए विशेष शोध एवं प्रायोगिक अध्ययन उपलब्ध हैं। डिजिटल सलाहों के माध्यम से भू-स्थानिक (localised) तथा मौसम-अनुकूल सलाह मिलने पर छोटे और सीमांत किसानों ने समय-सीमा-बद्ध वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि दिखाई। (VoxDev) ICT-आधारित सामग्री (मोबाइल ऐप, वीडियो, लाइव काल) किसानों को कृषि तकनीकों का विस्तृत ज्ञान, प्रमुख कृषि चुनौतियों की पहचान और समाधान प्रदान करती है। इससे किसानों को खेती के प्रत्येक चरण (बुवाई, सिंचाई, पोषक प्रबंधन, कीट/रोग नियंत्रण) में वैज्ञानिक समझ में वृद्धि होती है।

खेती के तरीकों पर प्रभाव

डिजिटल सलाह सेवाओं का दूसरा उद्देश्य है किसानों के व्यवहार में सुधार लाना—जैसे फैसलों का वैज्ञानिक आधार, लागत-प्रभावी इनपुट उपयोग और जोखिम प्रबंधन।

क. सटीक सलाह के कारण व्यवहार में बदलाव

किसानों ने डिजिटल सूचना प्राप्त कर अनावश्यक खर्च में कमी तथा सिंचाई/खाद/उर्वरक निर्णयों में अनुशंसित प्रथाओं का पालन शुरू किया है। लगातार मोबाइल-आधारित सलाहों से किसान अब अधिक डेटा-समर्थ निर्णय ले रहे हैं।

ख. जोखिम-मुक्त निर्णय

एक अध्ययन ने यह दिखाया है कि डिजिटल कृषि सलाह ने मौसम-संकेत प्राप्त किसानों को अप्रत्याशित मौसम के प्रभाव से निपटने में बेहतर तैयारी और निर्णय क्षमता दी, जिससे उपज और जोखिम प्रबंधन दोनों में सुधार का संकेत मिला।

नई तकनीक अपनाने पर प्रभाव

डिजिटल सलाह सेवाएँ तकनीकी गोद लेने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह प्रभाव तीन स्तरों पर दिखाई देता है:

क. तकनीक की समझ और आत्मविश्वास

जब किसान नई तकनीकों जैसे ड्रिप/स्प्रिंकलर सिस्टम, मिट्टी-परिक्षण आधारित प्रबंधन, IPM विधियाँ आदि के बारे में वीडियो/स्टेप-बाय-स्टेप जानकारी मोबाइल पर प्राप्त करते हैं, तो वे उन तकनीकों को अपनाने के लिए अधिक प्रेरित होते हैं।

ख. सामाजिक सीख (Peer learning)

डिजिटल प्लेटफॉर्म उपयोग करने वाले किसान अक्सर गाँव में सूचना के केंद्र बनते हैं, जिससे तकनीकी जानकारी सामूहिक रूप से फैलती है।

ग. व्यक्तिगत सलाह का प्रभाव

स्थानीय संदर्भ (मिट्टी, मौसम, फसल) के अनुसार व्यक्तिगत डिजिटल सलाह से किसानों को नई तकनीक अपनाने का आत्मविश्वास बढ़ता है।

वास्तविक आंकड़े और प्रभाव – सारणी (Table)

नीचे दिए गए सारणी में डिजिटल सलाह सेवाओं से जुड़े प्रत्येक प्रभाव-सूचक की दिशा में उपलब्ध प्रमाण संक्षेप में दिखाये गए हैं:

प्रभाव-सूचक	प्राप्त परिणाम / शोध निष्कर्ष	स्रोत
डिजिटल सलाह सेवाओं का पहुँच विस्तार	करोड़ों किसानों को मोबाइल आधारित कृषि सलाह देने की क्षमता	Digital Agriculture Mission लक्ष्य ~11 करोड़ किसानों तक सेवा देना
ज्ञान एवं निर्णय क्षमता में सुधार	डिजिटल सलाह से किसानों को **समय-सीमा-विशिष्ट कृषि जानकारी** प्राप्त	उल्लेखनीय शोध निष्कर्ष
व्यवहार में परिवर्तन	डेटा-आधारित निर्णय तथा अनुशंसित कृषि प्रथाओं अनुपालन में वृद्धि	AIS उपकरणों से अध्ययन
तकनीक अपनाना	नई तकनीकों के आत्म-अपनाने में वैज्ञानिक समर्थन	शोध/प्रायोगिक अध्ययन

भारत के संदर्भ में डिजिटल कृषि सलाह का व्यावसायिक/ राजनीतिक समर्थन

भारत में डिजिटल खेती केवल सूचना तक सीमित नहीं है; राज्य-स्तर पर डिजिटल कृषि इकोसिस्टम विकसित किए जा रहे हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने रियल-टाइम कृषि सूचना नेटवर्क तथा डिजिटल कृषि नीति पर काम शुरू किया है, जिससे किसानों तक फसल, बीज, मौसम, बाजार भाव और बीमा की जानकारी रियल-टाइम पहुँच सकेगी। (Indiatimes) अतः डिजिटल सलाह सेवाएँ सरकार के लक्षित डिजिटल पहलें जैसे किसान रजिस्ट्री, डिजिटल भूमि मानचित्र, अर्थव्यवस्था-समर्थ प्लेटफॉर्म आदि के साथ बुनियादी ढांचे की रूपरेखा प्रदान करती हैं।

चुनौतियाँ और आवश्यक सुधार

डिजिटल सलाह सेवाओं में स्पष्ट लाभ होने के बावजूद कुछ वास्तविक बाधाएँ हैं:

डिजिटल साक्षरता और भाषा अवरोध: कई छोटे किसानों के पास स्मार्टफोन या डिजिटल कौशल की कमी होती है—जिससे वे डिजिटल सेवाओं का पूरा लाभ नहीं ले पाते।

नेटवर्क और कनेक्टिविटी सीमाएँ: दूरदराज क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी कमजोर होने पर डिजिटल सलाह बाधित हो जाती है।

विश्वसनीयता/स्थानीय अनुकूलता: पर्याप्त स्थानीय-अनुकूल सलाह न मिलने पर किसान भरोसा खो सकता है—इसका समाधान संदर्भ-विशेष डेटा और स्थानीय भाषा सामग्री से हो सकता है।

निष्कर्ष

डिजिटल कृषि सलाह सेवाएँ भारतीय कृषि विस्तार प्रणाली में एक नवीन, विस्तारशील और लागत-प्रभावी साधन के रूप में स्थापित हो रही हैं। शोध प्रमाण बताते हैं कि डिजिटल सलाह किसानों के कृषि ज्ञान, व्यवहार परिवर्तन और तकनीक अपनाने की दिशा में सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। डिजिटल सेवाओं के अधिक कुशल उपयोग से किसान वैज्ञानिक निर्णय, मूल्य-प्रबंधन, जोखिम नियंत्रण और तकनीकी अपनाने को बढ़ावा दे रहे हैं। भारत जैसे कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था में डिजिटल कृषि सलाह सेवाओं का राजनीतिक समर्थन, तकनीकी उन्नयन और ग्रामीण डिजिटल साक्षरता की तैयारी इसे भविष्य में एक मजबूत कृषि प्रणाली की ओर अग्रसर कर सकती है। उपयुक्त नीति-समर्थन और स्थानीय-अनुकूल सेवाओं के साथ, डिजिटल कृषि सलाह सेवाएँ किसानों के निर्णय-निर्माण को और अधिक सतत, विज्ञान-आधारित और लाभकारी बना सकती हैं—जो दीर्घकालिक कृषि विकास तथा ग्रामीण कल्याण के लिए आवश्यक है।

♣♣♣

रेशम उत्पादन: प्रकृति, विशेषता और रेशम का महत्व

गंगा राम कमलापुरी*: शोध छात्र, जंतु विज्ञान विभाग
डॉ. अभिनव सिंह: सहायक प्राध्यापक जंतु विज्ञान विभाग
आचार्य नरेंद्र देव किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बभनान, गोंडा (उ. प्र.)
डॉ. पतिराम मौर्य: सहायक प्राध्यापक, कृषि प्रसार विभाग, भवदीय एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, सीवार ,सोहावल, अयोध्या, (उ. प्र.)

रेशम उत्पादन (Sericulture) रेशम के कीड़ों के पालन और उनसे रेशम प्राप्त करने की प्रक्रिया है। रेशम उत्पादन में घरेलू रेशम कीट (जिसे 'बॉम्बेक्स मोरी' भी कहा जाता है) के कैटरपिलर सबसे अधिक उपयोग की जाने वाली रेशम कीट प्रजाति हैं। रेशम उत्पादन (Sericulture) की शुरुआत सबसे पहले 3500 ईसा पूर्व (B.C.) में चीन की महारानी हो-शौ-मिन (Hoshomin) द्वारा की गई थी। भारत और चीन रेशम के दुनिया के अग्रणी उत्पादक हैं। इन दोनों देशों का संयुक्त रेशम उत्पादन वैश्विक उत्पादन का 60% से अधिक (वर्तमान 2025 के आंकड़ों के अनुसार लगभग 95%) हिस्सा रखता है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा रेशम उत्पादक और सबसे बड़ा उपभोक्ता है। भारत दुनिया का एकमात्र देश है जो रेशम की सभी पाँचों व्यावसायिक किस्मों (मलबेरी, तसर, ओक तसर, एरी और मूंगा) का उत्पादन करता हैरेशम एक ऐसा रेशा है जो दो अलग-अलग प्रोटीनों - सेरिसिन (sericin) और फ़ाइब्रोइन (fibroin) से बना होता है। रेशम के रेशे का लगभग 80% हिस्सा फ़ाइब्रोइन से बना होता है, जो इसके केंद्र (core) में केंद्रित रहता है। यह केंद्र सेरिसिन की एक परत से घिरा होता है (जो रेशम का शेष 20% हिस्सा बनाता है)। रेशे की सेरिसिन परत में पिगमेंट या रंजक (जैसे जेनथोफिल) की उपस्थिति रेशम को रंग प्रदान करती है। प्रत्येक प्रकार के रेशम का एक विशिष्ट रंग होता है, जैसा कि नीचे दी गई तालिका में दिखाया गया है।

रेशम का नाम (Name of Silk)	वैज्ञानिक नाम (Scientific Name)	रंग (Colour)
शहतूत रेशम (Mulberry Silk)	*Bombyx mori*	पीला/हरा (Yellow/Green)
एरी रेशम (Eri Silk)	*Samia ricini*	मलाईदार-सफेद/ईंट-लाल (Creamy-White/Brick-Red)
तसर रेशम (Tasar Silk)	*Antheraea paphia/ mylitta*	तांबा-भूरा (Copper-Brown)
मूंगा रेशम (Muga Silk)	*Antheraea assamensis*	सुनहरा (Golden)
ओक तसर (Oak Tasar)	*Antheraea proylei*	सुनहरा भूरा (Golden Brown)

बॉम्बिक्स मोरी (*Bombyx mori*): परिचय

बॉम्बिक्स मोरी (*Bombyx mori*), जिसे आमतौर पर घरेलू रेशम कीट कहा जाता है, का व्यवस्थित वर्गीकरण (Systematic Position) नीचे दिया गया है: -

जगत (Kingdom): जन्तु-जगत् (Animalia)
संघ (Phylum): आर्थोपोडा (Arthropoda)
वर्ग (Class): इन्सेक्टा (Insecta)
गण (Order): लेपिडोप्टेरा (Lepidoptera)
कुल (Family): बॉम्बिसिडी (Bombycidae)
वंश (Genus): *बॉम्बिक्स* (*Bombyx*)
जाति (Species): *मोरी* (*mori*)

स्वभाव/प्रकृति और आवास

बॉम्बिक्स मोरी (*Bombyx mori*), जिसे आमतौर पर 'शहतूत रेशम कीट' कहा जाता है, की प्रकृति (Habit) और आवास (Habitat) का विवरण निम्नलिखित है:

स्वभाव / प्रकृति:

- **भोजन:** इसके लार्वा (कैटरपिलर) बहुत लालची होते हैं और केवल शहतूत (Mulberry) की पत्तियों को खाते हैं।
- **उड़ने में असमर्थ:** पालतू होने के कारण वयस्क रेशम के पतंगे (Silk Moths) उड़ नहीं सकते। उनके पंख कमजोर होते हैं और वे केवल संभोग (Mating) के लिए सक्रिय होते हैं।
- **जीवन चक्र:** यह एक 'होलोमेटाबोलस' (Holometabolous) कीट है, जिसका अर्थ है कि इसका जीवन चक्र चार अवस्थाओं— अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क— से होकर गुजरता है।
- **प्रजनन:** वयस्क पतंगे भोजन नहीं करते; उनका मुख्य उद्देश्य केवल प्रजनन करना होता है। संभोग के तुरंत बाद नर मर जाता है और अंडे देने के बाद मादा की मृत्यु हो जाती है।

आवास

- **पालतू जीव:** बॉम्बिक्स मोरी पूरी तरह से एक पालतू (Domesticated) कीट है। यह अब जंगलों में स्वतंत्र रूप से नहीं पाया जाता है।
- **भौगोलिक विस्तार:** मूल रूप से यह चीन की प्रजाति है। वर्तमान में, 2025 तक यह रेशम उत्पादन (Sericulture) के लिए मुख्य रूप से भारत चीन जापान कोरिया ऑस्ट्रेलिया और इटली जैसे देशों में पाला जाता है।
- **कृत्रिम वातावरण:** इन्हें नियंत्रित तापमान और आर्द्रता वाले बंद कमरों में 'रियरिंग ट्रे' (Rearing trays) पर रखा जाता है।

जीवन चक्र

बॉम्बेक्स मोरी (शहतूत रेशमकीट) के जीवन चक्र में चार चरण शामिल होते हैं:अंडा, लार्वा (रेशमकीट), प्यूपा और वयस्क कीट। यह 6-8 हफ़्तों में पूर्ण कायांतरण (metamorphosis) की प्रक्रिया से गुजरता है, जिसकी अवधि प्रजाति के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। लार्वा अंडे से निकलता है, शहतूत की पत्तियों को बड़े चाव (तेजी) से खाता है, और फिर रेशम का कोकून (प्यूपा चरण) बुनता है, जिसके अंदर वह एक वयस्क कीट में बदल जाता है जो संभोग करता है और अंडे देता है, जिससे यह चक्र फिर से शुरू हो जाता है। इसका विवरण इस प्रकार है:

1. अंडा अवस्था (9-14 दिन)

- एक मादा कीट शहतूत की पत्तियों पर 300-400 छोटे, पीले रंग के अंडे देती है।
- उपजाऊ अंडे गहरे नीले-धूसर (blue-gray) रंग के हो जाते हैं, और ऊष्मायन (incubation) के बाद, नन्हे लार्वा अंडों से बाहर निकल आते हैं।

2. लार्वा अवस्था (20-30 दिन)

- अंडों से निकले इन कीटों को रेशमकीट कहा जाता है, जो शहतूत की पत्तियों को बहुत तेजी से खाते हैं।
- वे बड़ी तेजी से बढ़ते हैं और आकार बढ़ने के साथ चार से पांच बार अपनी त्वचा (केंचुली) छोड़ते हैं, जिसे 'मोल्टिंग' (molting) कहा जाता है।

3. प्यूपा अवस्था (10-15 दिन)

- पूर्ण विकसित लार्वा अपनी रेशम ग्रंथियों से निकलने वाले एक निरंतर रेशम के धागे का उपयोग करके अपने चारों ओर एक सुरक्षात्मक कोकून बुनता है।
- कोकून के अंदर, लार्वा प्यूपा (chrysalis) में बदल जाता है।

4. वयस्क कीट अवस्था (3-10 दिन)

- वयस्क कीट कोकून को तोड़कर बाहर निकलता है।
- वयस्क कीट कुछ नहीं खाते और केवल कुछ दिनों तक जीवित रहते हैं; उनका मुख्य उद्देश्य जीवन चक्र को जारी रखने के लिए संभोग करना और अंडे देना होता है।

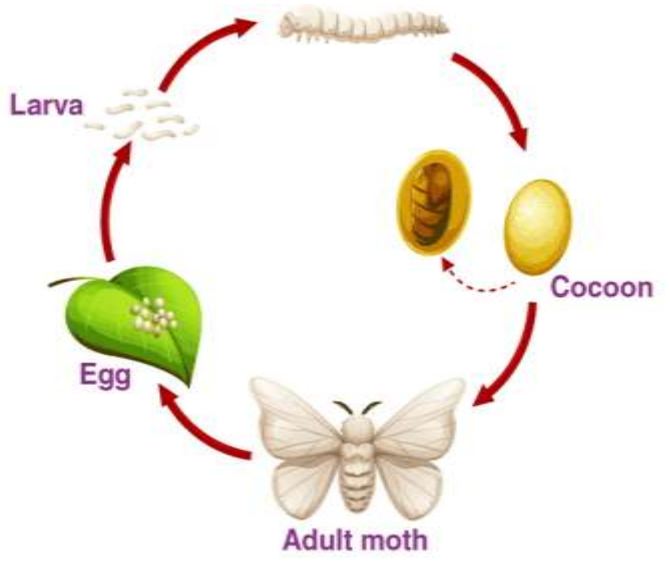

रेशम प्रसंस्करण

कोकून (रेशम के कोश) से रेशम निकालने की क्रिया को रेशम प्रसंस्करण के रूप में जाना जाता है। कोकून को धूप में रखकर (या गर्मी के संपर्क में लाकर) रेशम को अलग किया जाता है। रेशम की रीलिंग (reeling) के बाद, कोकून से रेशम को सुलझाने या खोलने की प्रक्रिया की जाती है। इसके बाद रेशम के धागे को ब्लीच (विंरजन) किया जाता है। फिर रेशम के फाइबर (तंतु) की कताई करके उससे रेशम के धागे तैयार किए जाते हैं।

रेशम की प्रकृति और विशेषता

रेशम (Silk) की प्रकृति और विशेषताओं का विवरण नीचे दिया गया है:

1. **प्राकृतिक प्रोटीन फाइबर:** रेशम मुख्य रूप से फाइब्रोइन और सेरिसिन नामक प्रोटीन से बना होता है। यह एक प्राकृतिक पशु रेशा (Animal fiber) है जिसे रेशम के कीड़ों के कोकून से प्राप्त किया जाता है। सेरिसिन एक चिपचिपा और गोंद जैसा प्रोटीन है जो रेशम के कीड़ों (*बॉम्बिक्स मोरी*) द्वारा उत्पादित किया जाता है। यह फाइब्रोइन (रेशम का मुख्य रेशा) के दो तंतुओं को आपस में जोड़कर रखने का काम करता है। रेशम के कोकून में लगभग 20% से 30% भाग सेरिसिन होता है, जबकि शेष 70-80% फाइब्रोइन होता है।
2. **चमक और सुंदरता:** रेशम की अपनी एक प्राकृतिक चमक होती है। इसकी रेशों की बनावट त्रिकोणीय प्रिज्म जैसी होती है, जो प्रकाश को अलग-अलग कोणों से परावर्तित करती है, जिससे इसमें अनूठी चमक पैदा होती है।
3. **मजबूती:** प्राकृतिक रेशों में रेशम सबसे मजबूत रेशों में से एक माना जाता है। वजन के अनुपात में इसकी तुलना स्टील के तार से भी की जा सकती है, हालांकि गीला होने पर इसकी मजबूती थोड़ी कम हो जाती है।
4. **कोमलता और आराम:** यह छूने में बहुत नरम और चिकना होता है। यह त्वचा के लिए बहुत आरामदायक होता है और इससे एलर्जी होने की संभावना बहुत कम होती है।
5. **तापमान नियंत्रण:** रेशम में उत्कृष्ट थर्मल गुण होते हैं। यह सर्दियों में शरीर को गर्म और गर्मियों में ठंडा रखने में मदद करता है।
6. **अवशोषक क्षमता:** रेशम अपनी नमी सोखने की क्षमता के लिए जाना जाता है। यह अपने वजन का लगभग 11% से 30% तक नमी सोख सकता है, फिर भी यह छूने में सूखा महसूस होता है।
7. **लचक:** रेशम के रेशों में मध्यम 10% लचीलापन होता है। इसे थोड़ा खींचा जा सकता है, और यह अपनी मूल स्थिति में वापस आने की क्षमता रखता है।

रेशम का महत्व

रेशम न केवल एक कपड़ा है, बल्कि इसका आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक महत्व भी बहुत अधिक है। इसके मुख्य महत्व निम्नलिखित हैं:

1. आर्थिक महत्व

- **रोजगार का साधन:** रेशम उत्पादन (सेरीकल्चर) लाखों लोगों, विशेषकर ग्रामीण और गरीब परिवारों के लिए आजीविका का एक प्रमुख स्रोत है।
- **विदेशी मुद्रा:** भारत रेशम का एक बड़ा निर्यातक है, जिससे देश को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

2. कपड़ा उद्योग में महत्व

- **वस्त्रों की रानी:** अपनी चमक, कोमलता और मजबूती के कारण रेशम को "वस्त्रों की रानी" कहा जाता है।
- **बहुमुखी उपयोग:** इसका उपयोग साड़ियाँ, सूट, गाउन, शर्ट और टाई जैसे शानदार परिधान बनाने में किया जाता है।

3. चिकित्सा और विज्ञान में महत्व

- **सर्जिकल टांके:** रेशम के रेशों का उपयोग घावों को सिलने के लिए 'टांके' (Sutures) बनाने में किया जाता है क्योंकि यह शरीर के अनुकूल होता है और प्राकृतिक रूप से मजबूत होता है।
- **घाव भरना:** रेशम के प्रोटीन (सेरिसिन और फाइब्रोइन) का उपयोग चिकित्सा पट्टियों और त्वचा के ऊतकों को पुनर्जीवित करने (Tissue Engineering) में किया जाता है।

4. सौंदर्य प्रसाधन में महत्व

त्वचा की देखभाल: रेशम के प्रोटीन का उपयोग लोशन, क्रीम और शैम्पू में किया जाता है क्योंकि यह त्वचा में नमी बनाए रखता है और इसे झुर्रियों से बचाता है।

ISSN: 3049-2211

5. सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व

शुभ माना जाना: भारत में रेशम को पवित्र माना जाता है और शादियों, त्योहारों तथा धार्मिक अनुष्ठानों में रेशमी वस्त्र (जैसे रेशमी साड़ियाँ) पहनना अनिवार्य माना जाता है।

6. पर्यावरण के अनुकूल

बायोडिग्रेडेबल: सिंथेटिक फाइबर (जैसे प्लास्टिक या नायलॉन) के विपरीत, रेशम एक प्राकृतिक फाइबर है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना आसानी से विघटित (decompose) हो जाता है।

रेशम उत्पादन के सबसे बड़े केंद्रों का विवरण

विश्व स्तर पर

- **चीन (China):** यह दुनिया का सबसे बड़ा रेशम उत्पादक देश है, जो वैश्विक रेशम उत्पादन का लगभग 70% से 80% हिस्सा उत्पादित करता है।
- **हांगझू (Hangzhou):** इसे अक्सर "दुनिया की रेशम राजधानी" (Silk Capital of the World) कहा जाता है। यहाँ 500 से अधिक रेशम उद्यम स्थित हैं और यहाँ "चीन राष्ट्रीय रेशम संग्रहालय" भी है।
- **प्रमुख क्षेत्र:** चीनमें झेजियांग (Zhejiang), जियांगसू (Jiangsu) और सिचुआन (Sichuan) प्रांत रेशम उत्पादन के मुख्य केंद्र हैं।

भारत में

भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा रेशम उत्पादक है और यह एकमात्र देश है जो रेशम की सभी पाँच व्यावसायिक किस्मों का उत्पादन करता है।

- **कर्नाटक (Karnataka):** इसे **"भारत का रेशम राज्य"** कहा जाता है। यह भारत के कुल कच्चे रेशम उत्पादन में लगभग **32% से 33%** का योगदान देता है।
- **रामनगर (Ramanagara):** कर्नाटक का यह जिला रेशम के कोकून के लिए **एशिया का सबसे बड़ा बाजार** माना जाता है।
- **प्रमुख शहर:** बेंगलुरु और मैसूर भारत के सबसे महत्वपूर्ण रेशम केंद्र हैं। मैसूरअपने "मैसूर सिल्क" के लिए विश्व प्रसिद्ध है।
- **अन्य प्रमुख राज्य:** कर्नाटक के बाद आंध्र प्रदेश(धर्मावरम), असम (सुआलकुची - मूगा रेशम के लिए प्रसिद्ध), और पश्चिम बंगाल (मुर्शिदाबाद) प्रमुख रेशम उत्पादन केंद्र हैं।

♣♣♣

रेशमकीट पालन: ग्रामीण समृद्धि और आजीविका का आधार

आस्था सिंह, प्रज्ञा त्रिपाठी, रामकेवल
कीटविज्ञान एवं कृषि जन्तु विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.)

रेशम को “कपड़ा उद्योग की रानी” (Queen of Textiles) कहा जाता है, क्योंकि इसकी मुलायम चमक, आकर्षक बनावट और मजबूती इसे अन्य वस्त्रों से अलग बनाती है। प्राचीन काल से ही रेशमी वस्त्र भारतीय संस्कृति, परंपरा और ऐश्वर्य का प्रतीक रहे हैं। विवाह, त्योहार और धार्मिक अवसरों पर रेशमी परिधान विशेष रूप से पहने जाते हैं, जिससे इसकी मांग हमेशा बनी रहती है। भारत में रेशमकीट पालन केवल एक कृषि गतिविधि भर नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण आजीविका, महिला सशक्तिकरण और लघु उद्यमिता का सशक्त साधन है। छोटे और सीमांत किसान परिवार, जिनके पास सीमित भूमि होती है, वे भी शहतूत की खेती और रेशमकीट पालन के माध्यम से अपनी आय को दोगुना कर सकते हैं। इस व्यवसाय में महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि वे पालन, कोकून संग्रहण और धागा निकालने जैसे कार्यों में सक्रिय रूप से जुड़ी रहती हैं। इस प्रकार, रेशमकीट पालन न केवल वस्त्र उद्योग को कच्चा माल उपलब्ध कराता है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने और किसानों की जीवन-स्तर को सुधारने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है।

भारत में रेशमकीट पालन का महत्व

भारत, चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा रेशम उत्पादक देश है और यहाँ की विशेषता यह है कि देश में सभी चार प्रमुख प्रकार के रेशम – मल्बरी, तसर, एरी और मगा – उत्पादित होते हैं। यह विविधता भारत को वैश्विक रेशम उद्योग में एक अनोखी पहचान दिलाती है।

कर्नाटक को भारत का "रेशम राज्य" कहा जाता है क्योंकि यहाँ सबसे अधिक रेशम उत्पादन होता है। यह राज्य मल्बरी रेशम उत्पादन में अग्रणी है और यहाँ का रेशम देश-विदेश में बहुत प्रसिद्ध है। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु भी मल्बरी रेशम उत्पादन के प्रमुख केंद्र हैं, जहाँ शहतूत की अच्छी किस्मों और उन्नत तकनीकों के कारण उच्च गुणवत्ता वाला रेशम तैयार किया जाता है। झारखंड, छत्तीसगढ़ और ओडिशा मुख्य रूप से तसर रेशम उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं। यहाँ के वन क्षेत्रों में पाए जाने वाले प्राकृतिक पौधे तसर रेशमकीटों के लिए उपयुक्त भोजन प्रदान करते हैं, जिससे यह रेशम खुरदरा, चमकदार और विशिष्ट गुणों वाला बनता है। असम और अन्य उत्तर-पूर्वी राज्य एरी और मगा रेशम उत्पादन का प्रमुख केंद्र हैं। एरी रेशम को "शांत रेशम" (Ahimsa Silk) कहा जाता है

क्योंकि इसमें कोकून से धागा निकालते समय कीट को नहीं मारा जाता। वहीं, मगा रेशम अपनी सुनहरी चमक के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध है और इसे केवल असम में ही उत्पादित किया जाता है। भारत की सांस्कृतिक और पारंपरिक वेशभूषा में रेशम का विशेष स्थान है। चाहे वह साड़ी हो, असम की मेखला हो या दक्षिण भारत की पारंपरिक पोशाक, रेशम को सदैव शान और समृद्धि का प्रतीक माना गया है। विवाह, त्योहार और धार्मिक अवसरों पर रेशमी वस्त्र पहनने की परंपरा ने इसकी मांग को हमेशा बनाए रखा है। इस प्रकार रेशमकीट पालन न केवल किसानों की आजीविका का साधन है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक धरोहर और आर्थिक मजबूती का भी आधार है।

रेशम के प्रकार

भारत में मुख्य रूप से चार प्रकार का रेशम उत्पादित होता है-

मल्बरी रेशम (Mulberry Silk)	सबसे अधिक मात्रा में, शहतूत की पत्तियों से।
तसर रेशम (Tasar Silk)	जंगलों में पाए जाने वाले कीटों से, छत्तीसगढ़ व झारखंड प्रसिद्ध।
एरी रेशम (Eri Silk)	मुख्य रूप से असम और उत्तर-पूर्वी भारत में।
मगा रेशम (Muga Silk)	केवल असम में उत्पादन, सुनहरी रंग के कारण प्रसिद्ध।

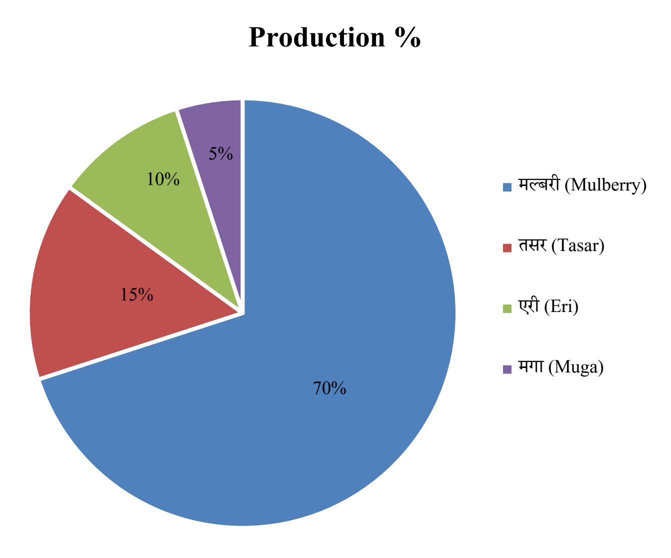

रेशमकीट पालन की प्रक्रिया

1. शहतूत की खेती

रेशमकीट मुख्य रूप से शहतूत की पत्तियाँ खाते हैं। इसलिए शहतूत की अच्छी किस्में लगाई जाती हैं। भूमि तैयार कर पौधों को कतारों में लगाया जाता है और नियमित छंटाई व खाद-पानी की व्यवस्था की जाती है।

2. कीट अंडों (Silkworm Eggs) का प्रबंधन

रेशमकीट के अंडों का प्रबंधन अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाता है। इन्हें नियंत्रित तापमान (20-28°C) और आर्द्रता (70–85%) में रखा जाता है ताकि अंडों का विकास समान रूप से हो सके। अंडों को साफ और हवादार वातावरण में रखा जाता है, जहाँ सीधे धूप या अत्यधिक नमी का प्रभाव न पड़े। उचित परिस्थितियों में रखने पर लगभग 10–12 दिनों में इनमें से लार्वा (सूंडी) निकल आते हैं। अंडों की निगरानी के लिए समय-समय पर उनकी जाँच भी की जाती है ताकि संक्रमण या खराब अंडों को अलग किया जा सके।

3. पालन (Rearing)

लार्वा को बांस की ट्रे में रखकर ताजा शहतूत की पत्तियाँ खिलाई जाती हैं। लगभग 25-30 दिनों में लार्वा पाँच अवस्थाओं (instars) से गुजरते हैं।

4. कोकून निर्माण

जब लार्वा पूर्ण विकसित हो जाते हैं, तो वे धागा निकालकर चारों ओर लपेटते हुए कोकून बनाते हैं। यही कोकून रेशम उत्पादन का आधार है।

5. रेशम धागा निकालना (Reeling)

कोकून से रेशमी धागा निकालने की प्रक्रिया को रीलिंग (Reeling) कहा जाता है। सबसे पहले कोकून को गर्म पानी में उबाला जाता है या फिर उन्हें भाप से गर्म किया जाता है, जिससे कोकून का बाहरी आवरण नरम हो जाता है और अंदर मौजूद कीट मर जाता है। इसके बाद कोकून के सिरे से महीन धागा (फिलामेंट) खोजकर निकाला जाता है और कई धागों को आपस में मिलाकर एक मजबूत धागा तैयार किया जाता है। रीलिंग की यह प्रक्रिया हाथ से (चर्खी द्वारा) भी की जाती है और आधुनिक रीलिंग मशीनों से बड़े पैमाने पर भी। एक कोकून से लगभग 600–900 मीटर लंबा रेशमी धागा प्राप्त किया जा सकता है। तैयार रेशमी धागे को आगे बुनाई उद्योग (Weaving Industry) तक पहुँचाया जाता है, जहाँ से इसे साड़ी, कपड़े और अन्य रेशमी उत्पादों में बदला जाता है। इस तरह कोकून से शुरू हुई प्रक्रिया अंततः विश्वप्रसिद्ध रेशमी वस्त्रों में परिवर्तित होती है।

रेशमकीट पालन के लाभ

1. अधिक आय का स्रोत

रेशम पालन एक अतिरिक्त आय का साधन है, जिसे किसान अन्य कृषि कार्यों के साथ आसानी से कर सकते हैं छोटी भूमि पर भी शहतूत

की खेती करके कोकून उत्पादन किया जा सकता है। रेशम की हमेशा मांग बनी रहने के कारण किसानों को उचित बाजार मूल्य मिलता है।

2. ग्रामीण रोजगार का साधन

एक हेक्टेयर शहतूत की खेती से 6–8 लोगों को सालभर रोजगार मिलता है। इससे ग्रामीण बेरोजगारी और पलायन की समस्या कम होती है। परिवार के सभी सदस्य पालन प्रक्रिया में शामिल होकर आय अर्जित कर सकते हैं।

3. महिला सशक्तिकरण

महिलाएँ कोकून पालन, धागा निकालने (रीलिंग) और बुनाई जैसे कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। इससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती हैं और घरेलू आय में योगदान करती हैं। ग्रामीण महिला समूह (SHGs) भी रेशम उत्पादन और विपणन में जुड़कर अपनी सामाजिक स्थिति मजबूत कर रही हैं।

4. कम निवेश, अधिक लाभ

रेशम पालन शुरू करने के लिए बहुत अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े से साधन और प्रशिक्षण के साथ किसान इस कार्य को सफलतापूर्वक कर सकते हैं। अल्प समय में कोकून से अच्छा लाभ प्राप्त होता है, जिससे यह जोखिम रहित व्यवसाय बन जाता है।

5. ग्रामीण उद्योग को बढ़ावा

रेशम उद्योग कुटीर उद्योगों और हस्तशिल्प को बढ़ावा देता है। कोकून से प्राप्त धागे से बुनाई, रंगाई और तैयार वस्त्र बनाने का कार्य स्थानीय स्तर पर किया जाता है। इससे गाँवों में छोटे उद्योगों और उद्यमिता (Entrepreneurship) के अवसर बढ़ते हैं।

6. निर्यात क्षमता और विदेशी मुद्रा अर्जन

भारत से हर साल बड़ी मात्रा में रेशमी धागा, साड़ी और अन्य उत्पाद विदेशों में निर्यात किए जाते हैं। इससे देश को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है और अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। भारतीय रेशम विश्वभर में अपनी गुणवत्ता और आकर्षण के लिए प्रसिद्ध है।

रेशमकीट पालन की प्रमुख चुनौतियाँ

1. कीट रोग और परजीवी का खतरा: रेशमकीट विभिन्न रोगों (जैसे पेब्रिन, फ्लेचरि, ग्रासेरी) और परजीवियों से प्रभावित हो सकते हैं। यदि समय पर नियंत्रण न किया जाए तो पूरा उत्पादन नष्ट हो सकता है। इसके लिए रोग-प्रतिरोधी नस्लों का चयन और स्वच्छ पालन तकनीक आवश्यक है।

2. जलवायु परिवर्तन का प्रभाव: अत्यधिक गर्मी, ठंड, आर्द्रता में बदलाव या असामान्य वर्षा से रेशमकीट का जीवन चक्र प्रभावित होता है। तापमान और नमी में असंतुलन से अंडों से लार्वा निकलने और कोकून बनने की प्रक्रिया बाधित होती है। जलवायु अनुकूलन तकनीक और नियंत्रित वातावरण की आवश्यकता है।

3. बाजार में मूल्य का उतार-चढ़ाव: रेशम धागे और कोकून की कीमतें बाजार में अक्सर अस्थिर रहती हैं। छोटे किसान और पालनकर्ता उचित लाभ नहीं कमा पाते। सरकारी समर्थन मूल्य और सहकारी समितियों के माध्यम से स्थिर बाजार व्यवस्था जरूरी है।

4. तकनीकी जानकारी और प्रशिक्षण की कमी: अधिकांश ग्रामीण किसान पारंपरिक तरीकों से पालन करते हैं, जिससे उत्पादन क्षमता कम रहती है। आधुनिक तकनीक, मशीनों और वैज्ञानिक प्रबंधन का अभाव है। प्रशिक्षण केंद्रों और विस्तार सेवाओं की पहुँच सीमित है।

5. गुणवत्ता नियंत्रण की समस्या: कई बार पालन के दौरान स्वच्छता की कमी से धागे की गुणवत्ता प्रभावित होती है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए उच्च गुणवत्ता वाला रेशम आवश्यक है।

6. अत्यधिक श्रम की आवश्यकता: रेशमकीट पालन एक श्रम-प्रधान कार्य है, जिसमें लगातार देखभाल, भोजन प्रबंधन और वातावरण नियंत्रण की आवश्यकता होती है। श्रमिकों की कमी से उत्पादन प्रभावित हो सकता है।

7. भंडारण और विपणन की समस्या: छोटे किसानों के पास कोकून और धागे के सुरक्षित भंडारण की सुविधा नहीं होती। उचित विपणन नेटवर्क की कमी के कारण किसानों को बिचौलियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

समाधान और सरकारी पहल

1.केंद्रीय रेशम बोर्ड (Central Silk Board) की भूमिका

- यह बोर्ड किसानों को तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण और गुणवत्ता नियंत्रण की सुविधा उपलब्ध कराता है।
- विभिन्न राज्यों में प्रशिक्षण केंद्र और अनुसंधान संस्थान स्थापित किए गए हैं ताकि किसान आधुनिक पालन तकनीक सीख सकें।
- रोग प्रबंधन, उच्च उत्पादक नस्लों और उन्नत किस्मों के विकास पर भी कार्य किया जा रहा है।

2. सरकारी योजनाएँ

- **प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP):** ग्रामीण युवाओं और महिलाओं को स्वरोजगार के लिए वित्तीय सहायता और ऋण सुविधा प्रदान करता है।
- **राष्ट्रीय रेशम विकास कार्यक्रम (NSDP):** शहतूत की खेती, कीट पालन, रीलिंग और बुनाई तक हर चरण में मदद करता है।

ISSN: 3049-2211

- ♣ विभिन्न राज्य सरकारें भी रेशम उत्पादन बढ़ाने के लिए सब्सिडी और प्रोत्साहन योजनाएँ लागू कर रही हैं।

3. सहकारी समितियाँ और महिला स्वयं सहायता समूह (SHG)

- ♣ छोटे किसानों और पालनकर्ताओं को सस्ते ऋण, कच्चे माल और विपणन की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।
- ♣ SHG समूह महिलाओं को संगठित कर आर्थिक आत्मनिर्भरता और उद्यमिता की दिशा में आगे बढ़ा रहे हैं।

4. आधुनिक तकनीक और नवाचार

- ♣ रोग प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक तकनीक और स्वच्छ पालन पद्धति अपनाई जा रही है|
- ♣ स्वचालित रीलिंग मशीनों और उन्नत उपकरणों का उपयोग कर उत्पादन और गुणवत्ता दोनों में वृद्धि की जा रही है।
- ♣ डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और ई-मार्केटिंग के माध्यम से किसानों को सीधे बाजार से जोड़ने के प्रयास हो रहे हैं।

भविष्य की संभावनाएँ

भारत में रेशम की घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय मांग लगातार बढ़ रही है। यदि किसान आधुनिक तकनीक और प्रशिक्षण का लाभ उठाएँ तो रेशमकीट पालन आय और रोजगार का स्थायी साधन बन सकता है। साथ ही, यह पर्यावरण के अनुकूल और महिला-उन्मुख उद्योग है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत कर सकता है। रेशमकीट पालन केवल एक कृषि गतिविधि नहीं, बल्कि ग्रामीण समृद्धि और आत्मनिर्भरता का माध्यम है। यह किसानों को अतिरिक्त आय, महिलाओं को रोजगार और देश को निर्यात में मजबूती देता है। आने वाले समय में रेशम उत्पादन "गाँव से ग्लोबल" तक पहुँचने की क्षमता रखता है।

*****

वैज्ञानिक पद्धति से टमाटर की उन्नत खेती

युवराज कुमावत
यंग प्लांट ब्रीडर, मास्टर्स इन जेनेटिक्स ऐंड प्लांट ब्रीडिंग, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान

टमाटर (Tomato) का वानस्पतिक नाम *लाइकोपर्सिकन एस्कुलैटम* पुराना व *सोलेनम लाइकोपर्सिकम* नया नाम है टमाटर के अन्य नामों से भी जाना जाता है, टमाटर का पूर्वज (Ancestor) *सोलेनम लाइकोपर्सिकन केरासिफोमी* है। टमाटर के अन्य नाम जैसे की विलायती बैंगन, गरीब का संतरा, इंग्लैण्ड का प्यार, वूल्फ एपल, एप्पल ऑफ लव, संरक्षित भोजन नं. 1 प्रस्संकरण सब्जी भी कहते है। टमाटर का कुल सोलेनेसी व उत्पत्ति स्थान पेरू/लीमा है गुणसूत्र की बात करे तो 24 है व पुष्पक्रम रेसिम/ट्रस (Truss) है, फल प्रकार सरस/बेरी है। टमाटर का लाल रंग लाइकोपिन (20-25 mg/100g), पीला रंग केरोटीन व एल्केलॉयड/हरा रंग टीमेटाईन/संणेनिन के कारण होता हैं

टमाटर सब्जियों कि खेती में एक मुख्य फसल है क्योंकि इसमें खाद्य पौष्टिक पदार्थ प्रचूर मात्रा में मिलते हैं। एक अत्यंत लोकप्रिय सब्जी होने के कारण देश भर में सफलता पूर्वक उगाई जाती है। इसके फल शहरों में प्रायः सालभर उपलब्ध रहते हैं। दूसरे विश्व के हर भाग में पैदावार कि हिसाब से आलू के उपरान्त टमाटर का ही स्थान है।

टमाटर के उपयोग

टमाटर स्वादिष्ट होते हैं और इन्हें सूप, सलाद, चटनी, सॉस जैसे स्वादिष्ट व्यंजनों में डाला जा सकता है या दूसरी सब्जियों के साथ मिलाकर भी खाया जा सकता है। इनमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज, कैल्शियम, फॉस्फोरस, विटामिन और निकोटिनिक एसिड नामक एक खास एसिड जैसे कई पोषक तत्व होते हैं जो आपको स्वस्थ रखने में मदद करते हैं।

भूमि

टमाटर प्रायः सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जाता है, लेकिन अच्छी पैदावार के लिए जैविक पदार्थों से भरपूर दोमट या बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। यदि मिट्टी अधिक अम्लीय है तो चुने व्का व्यवहार करना चाहिए। टमाटर की खेती (Tomato Cultivation) 6 से 7 पीएच मान वाली भूमि में अच्छी होती है।

उन्नत प्रभेद

पूसा रूबी, पूसा गौरब, एव.एस.-102, हिसार अरुण, हिसार लालिमा, हिसार ललित, मारग्लोब, पंजाब छुहारा, पंजाब केसरी, एन.डी.टी.-3, एन.डी.टी.-4, एन.डी.टी.-11, स्वीट-72, पूसा सदाबहार, पंत बहार।

संकर किस्में

वैशालनी, रुपाली, नवीन, रजनी, अविनाश-2, अर्काविशाल, कंचन, पूसासंकर-1, पूसा संकर-2 एंड पूसा संकर-4।

बीज दर

अधिक उपजशील प्रजातियाँ (200-240 ग्राम प्रति एकड़), संकर प्रजातियाँ 60-80 आम प्रति एकड़। लगाने की समय टमाटर के बीज को पौधशाला में छोटी छोटी क्यारियों में बोकर बिचड़ा तैयार करते हैं तथा जब बिचड़े 4-5 सप्ताह के हो जाते हैं तो उन्हें पहले से तैयार तथा खाद दिए गए खेतों में रोपते हैं। पौधशाला में बीज गिराने का समय अगस्त से नवम्बर है।

ISSN: 3049-2211

पौधा रोपने की दूरी

कतार से कतार: 60-75 सें.मी. , पौधा से पौधा 45 सें.मी

खाद की मात्रा (प्रति एकड़)

गोबर की सड़ी खाद, यूरिया, सिंगल सुपर फास्फेट, म्यूरियेट ऑफ पोटाश क्रमशः 80-100 क्विंटल, 80 किग्रा 120-160 किग्रा 40 किग्रा। गोबर खाद, सिंगल सुपर फास्फेट, ग्यूरियेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा खेत की तैयारी के समय ही दे देते हैं। यूरिया की बाकी आधी मात्रा टॉप ड्रेसिंग के रुप में निकाई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाते समय देनी चाहिए।

टमाटर में वृद्धि नियामकों का प्रयोग

वृद्धि नियामक पदार्थ जैसे-पीसीपीए 50 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर फल लगने के समय पर्णीय छिड़काव कम या अधिक तापमान पर फल लगाने में सहायक होता है। इथ्रेल के 1000 पीपीएम के के घोल का छिडकाव फलों के पकने के समय करने से फल शीघ्र एवं एक समान पकते हैं।

सिंचाई

टमाटर एक बहुत ही सतर्क रूप से सिंचाई चाहने वाली फसल है। इसकी उचित समय पर सिंचाई करना बहुत ही आवश्यक है। इसमें अधिक सिंचाई तथा कम सिंचाई दोनों ही हानिकारक हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि भूमि मसामान्य नमी (Moderate Moisture) सदैव होनी चाहिये। इस प्रकार टमाटर की स्टेक फसल (Stake Crops) एवं गर्मी की फसल में सिंचाई 7 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार करनी चाहिये तथा जमीन की फसल (Ground Crops) एवं जाड़े की फसल के लिये सिंचाई 10 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार करनी चाहिये। सूखे की स्थिति के तुरन्त बाद अधिक पानी से फल फट जाते हैं।

अन्त: क्रियायें

टमाटर जल्दी-जल्दी एवं उथली निराई-गुढ़ाई चाहने वाली फचल है। अतः प्रत्येक सिंचाई के बाद 'हैंड हो' के द्वारा भूमि की ऊपरी सतह की भुरभुरी रखना चाहिये। गहरी निराई-गुड़ाई करने से जड़ों को हानि पहुँचाती है। इस प्रकार भूमि में अच्छी प्रकार से वायु संचार बनाये रखने के लिये पहली गुड़ाई रोपाई के 20-25 दिन बाद तथा दूसरी 40-45 दिन बाद गुड़ाई करके जड़ पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

कटाई, छटाई, और स्टेकिंग

बाजार में टमाटर को शीघ्र उपलब्ध कराने के लिये पौधों की कटाई करके एक तने (Single Stem) के रूप में करके स्टेक से बाँध देते हैं। इसको सहारा देना (Staking) भी कहते हैं। इससे पौधा अधिक बढ़ता है तथा टमाटर बड़ा तथा अधिक पैदावार मिलती है। कटाई-छटाई के बहुत से तरीके हैं, परन्तु मुख्य रूप से एक तने के रूप में (Single stem training) ही करते हैं। कटाई तथा स्टेकिंग का खर्च अधिक होने के कारण सभी उत्पादनकर्ता इसको अपना नहीं पाते।

उपज: 150-300 क्विंटल प्रति एकड़।

पौध संरक्षण कीट

1. फलवेधक या शीर्ष छेदक:- इसके पिल्लू फल में या शीर्ष पर पत्ती के जुड़े होने के स्थान पर छेद बनाकर घुस जाते हैं और उसे खाते हैं। प्रभावित फल खाने लायक नहीं रहते।

रोकथाम: थियोडाइकार्ब 75% डब्लू.पी. 1 ग्रा./ली. या फ्लूबेन्डियमाइड 480 एस.सी. 0.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।

2. लीफ माइनर:- ये कीट बहुत छोटे होते हैं जो पतियों के ऊपरी सतह में टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग बनाकर उत्तकों को खाते रहते हैं।

रोकथाम: थायोमेथोजाम 25% डब्लू.जी. 1 ग्राम प्रति 3 लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतराल में छिड़काव करें।

3. लीफ हॉपर (पत्ती फुदका):- इसके शिशु एवं वयस्क पत्तियों पर चिपककर रस चुसते हैं। अधिकता की अवस्था में पतियों पर छोटे-छोटे धब्बे दिखाई देते हैं।

रोकथाम: बुप्रोफेन्जिन 5% 1 मि.ली. 15 दिनों के अंतर पर दो बार 1 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़के।

रोग एवं रोकथाम

1. आर्द्रगलन:- पौधशाला में बिचढ़ों का मरना, मिट्टी की सतह से कुछ ऊपर तक जलस्किट सड़न।

रोकथाम: बीजोपचार तथा पौधशाला में क्यारियों की ब्लुकॉपर दवा की 2 से 3 ग्राम 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

2. अगेती झुलसा:- आरंभ में पत्तियों तथा तनों पर काले भूरे रंग के धब्बा बनना। उग्रता की स्थिति में धब्बों का एक दूसरे से मिलकर फैलना तथा पत्तियों का पीला पड़कर गिरना, फलों का असित होना।

3. पछेती झुलसा:- पहले पत्तियाँ तथा तनों पर भूरे बैंगनी धब्बे दिखाई पड़ते हैं यदि रोकथाम में देर हो जाए तो यह कंद तक पहुँच जाता है और सड़न पैदा कर देता है।

रोकथाम: दोनों प्रकार के झुलसा के रोकथाम के लिए टेबुकानेजओल (25%) 1 मि.ली. दवा का प्रति लीटर पानी घोल बनाकर बोने के 40 दिन बाद से 15 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करना चाहिए या इप्रोवोली कार्ब 5.5%+ प्रोपीनेब 61.25% डब्लू.पी. का 2-2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

4. फल विगलन:- कच्चे फलों का जलसिक्त धब्बे तथा पीलापन अथवा मटमैलापन लिए धब्बों से सड़न प्रारंभ होना।

ISSN: 3049-2211

रोकथाम: पौधों को खूंटी के सहारे उगाना, जल निकासी का समुचित प्रबंध तथा 5-7 दिन के अंतर पर प्रोपीनेब 70% डब्लू.पी. के 2.5 से 3 ग्राम के घोल को प्रति लीटर पानी में में मिलाकर छिड़कें।

5. बैक्टीरिया मुरझान:- पौधे का किसी भी अवस्था में अचानक सूख जाना।

रोकथाम: रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे स्वर्ण समृद्धि, स्वर्ण नवीन, स्वर्ण सम्पदा, स्वण विजया, स्वर्ण लालिमा, अर्का आभा अर्का रक्षक और सम्राट को खेती के लिए उपयोग में लाना।

टमाटर में दैहिक व्याधियां

फलों का फटना: वायुमण्डल तापमान जब 28 डिग्री सेन्टीग्रेड से ज्यादा होता है। तब फल फटने की संभावना बढ़ जाती है। बोरान की कमी के कारण भी फल फटने लगते है। नियत्रण हेतु बोरेक्स 10-15 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

सनस्केल्ड: फल के ऊपर पानी सोखने जैसा निशान बन जाता है जिसका कारण सूर्य के प्रकाश का सीधा पड़ना और तापमान अधिक होना है। इसके निवारण हेतु टमाटर को छाया प्रदान करके फलों को तेज धूप से बचाना चाहिए।

महत्वपूर्ण क्रियाएं

टमाटर के साथ गेंदा:- टमाटर के पौधों के साथ गेंदा लगाने से कई फायदे होते हैं, जैसे कि कीटों से बचाव और परागणकों को आकर्षित करना। गेंदे की तीखी गंध कुछ हानिकारक कीटों जैसे कि सफेद मक्खी को दूर भगाती है, और इसके रासायनिक यौगिक जैसे लिमोनेन भी कीटों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। गेंदा हानिकारक सूत्रकृमियों की आबादी को भी कम कर सकता है और परागणकों को आकर्षित करके परागण में सहायता कर सकता है।

टमाटर के साथ मल्चिंग:- टमाटर के साथ मल्चिंग करने से खरपतवारों को नियंत्रित करने, मिट्टी में नमी बनाए रखने और उपज बढ़ाने में मदद मिलती है। यह विधि टमाटर के पौधों को मजबूत और स्वस्थ बनाती है, जिससे वे कीटों और बीमारियों से कम प्रभावित होते हैं। मल्चिंग के लिए आमतौर पर सिल्वर-ब्लैक प्लास्टिक मल्चिंग शीट का उपयोग ड्रिप सिंचाई के साथ किया जाता है, जिससे लागत कम होती है और पैदावार 40-50% तक बढ़ सकती है।

टमाटर के साथ ड्रिप सिंचाई:- टमाटर के साथ ड्रिप सिंचाई (Drip Irrigation with Tomato) का मतलब टमाटर की खेती में पानी देने के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग करना है। इस विधि में पानी सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचता है, जिससे पानी की बचत होती है, खरपतवार कम होते हैं और फफूंदी जैसी बीमारियां कम होती हैं, जो सतह के गीलेपन से फैलती हैं। ड्रिप सिंचाई से टमाटर की पैदावार और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है, खासकर जब मल्चिंग (Moulding) के साथ प्रयोग किया जाता है।

टमाटर का बीज उत्पादन

टमाटर के बीज उत्पादन हेतु ऐसे खेत का चुनाव करें जिसमें पिछले वर्ष टमाटर की फसल न लगायी गयी हो। पृथक्करण दूरी आधार बीज के लिए 50 मीटर तथा प्रमाणित बीज के लिए 25 मीटर रखें। अवांछनीय पौधों को पुष्पन अवस्था से पूर्व, पुष्पन अवस्था में तथा जब तक फल पूर्ण रूप से परिपक्व न हुए हों, तो पौधे, फूल तथा फलों के गुणों के आधार पर निकाल देना चाहिए। फलों की तुड़ाई पूर्ण रूप से पकी अवस्था में करें, पके फलों को तोड़ने के बाद लकड़ी के बक्सों या सीमेंट के बने टैंकों में कुचलकर एक दिन के लिए किण्वन हेतु रखें। अगले दिन पानी तथा छलनी की सहायता से बीजों को गूदे से अलग करके छाया में सुखा लें। बीज को पेपर के लिफाफे, कपड़े के थैलों तथा शीशे के बर्तनों में भण्डारण हेतु रखें। बीज उपज 100-120 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

निष्कर्ष

टमाटर की वैज्ञानिक खेती के कई फायदे हैं, जिनमें उच्च उपज, बेहतर गुणवत्ता वाले फल और बढ़ी हुई आय शामिल हैं। यह फसल कम मेहनत में ज्यादा मुनाफा देती है और इसकी खेती में लागत भी कम आती है। वैज्ञानिक तरीकों में ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग, सही प्रशिक्षण प्रणाली (जैसे दो-तने वाली प्रशिक्षण प्रणाली) और पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग शामिल हैं, जो स्वस्थ विकास और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

♣♣♣

मिर्च की वैज्ञानिक खेती

मनीष पाण्डेय, नवीन कुमार सिंह, अमितेश कुमार सिंह, श्रीप्रकाश सिंह, राहुल कुमार सिंह, प्रतीक्षा सिंह, पूजा सिंह एवं प्रदीप पाण्डेय

व्यवसायिक फसलों में मिर्च का एक महत्वपूर्ण स्थान है। सोलेनेसी कुल के इस फसल को दुनिया भर में हरे फल उत्पादन तथा मसालों के रूप में बहुतायत मात्रा में प्रयोग किया जाता है। मिर्च की खेती की शुरूआत मध्य-दक्षिण अमेरिका से हुई थी और अब पूरे विश्व में इसकी खेती की जाती है। प्रायः सभी लोग कम अथवा अधिक मात्रा में मिर्च का प्रयोग किसी न किसी रूप में करते है। मिर्च भोजन को विशेषकर सब्जियों को चटपटा बना देता है जिससे उनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। तीखी हरी मिर्च का प्रयोग सलाद, सब्जी, केचप निर्माण में तथा सूखे लाल मिर्च का उपयोग मसाले, अचार तथा प्राकृतिक रंग (ओलियोरेजिन) उत्पादन में किया जाता है। मिर्च में तीखापन कैप्सेसिन का उपयोग विभिन्न उद्योगों जैसे दवा उद्योग, आहार, सौन्दर्य प्रसाधन इत्यादि में किया जाता है। इसके अलावा पोषक तत्वों में विटामिन सी हरे तथा परिपक्व लाल फल में बहुतायत में पाया जाता है। सम्पूर्ण विश्व में भारत मिर्च का सर्वाधिक उत्पादन, खपत और निर्यात करने वाला देश है। भारतवर्ष में मिर्च की खेती लगभग 8 लाख हे. क्षेत्रफल में की जाती है जिससे लगभग 13 लाख टन सूखे मिर्च का उत्पादन होता है। मिर्च की खेती से संबन्धित विभिन्न पहलुओं पर जानकारियां निम्नलिखित हैं।

उन्नत किस्में

मिर्च की सफल खेती की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए उचित किस्मों का चुनाव अति महत्वपूर्ण है। व्यावसायिक स्तर पर इसकी खेती हरे व लाल मिर्च के लिए की जाती है। सामान्यतया संकर किस्मों का उपज ज्यादा होता है परन्तु इसके लिए प्रतिवर्ष संकरण से प्राप्त बीजों का ही प्रयोग करना होता है। मुक्त परागित किस्मों के बीजों को उत्पादक अपने खेत में उगाये मिर्च की फसल के स्वपरागण से प्राप्त कर सकते हे। मिर्च की लोकप्रिय उन्नत किस्में निम्नवत् है-

मुक्त परागित किस्में

काशी अनमोल- इस किस्म के पौधे सीमित बढ़वार वाले एवं छातानुमा, फल ठोस, सीधे, वजनी एवं तीखे होते है। पौधे रोपण के 40-50 दिन बाद प्रथम तुड़ाई की जा सकती है, हरे फल उत्पादन हेतु यह एक उत्तम किस्म है। यह किस्म अगेती फसल के लिए उपयुक्त है तथा इसकी फलों की उपज लगभग 200 कु./हे. होती है।

काशी गौरव- इस किस्म के पौधे झाड़ीनुमा, गहरे हरे पत्तियों वाले तथा थ्रिप्स एवं पाली चीटी के प्रति सहनशीन तथा फल सड़न रोग-रोधी होते है। इसके फल गहरे हरे रंग के लंबे होते है तथा पौध रोपण के लगभग 60-70 दिनों बाद प्रथम तुड़ाई की जा सकती है। इस किस्म के हरे फलों की औसत उपज 150कु./हे. होती है।

पूसा ज्वाला- इसके पौधे हल्के हरे रंग के तथा झाड़ीनुमा होते है। फल पतले, 7-10 सेमी0 लंबे तथा नुकीले होते है। यह हरे एवं सूखे फल हेतु उत्तम किस्म है, चरपराहत अधिक होने एवं छिलका पतला होने के कारण यह निर्यात हेतु एक उत्तम किस्म है, इसके फलों की औसत उपज 90-100 कु0/हे0 होती है।

पूसा सदाबहार- इसके पौधे लम्बे, ऊपर की तरफ एवं गुच्छों में फलत, पत्तियां चौड़ी तथा फल लम्बे होते है। यह पत्ती मोड़ विषाणु रोग, फल-सड़न, थ्रिप्स एवं माइट्स से अवरोधी है। हरे फल का उत्पादन लगभग 80-90 कु./हे. होता है।

पंत सी. -1- यह किस्म पत्ती मोड़ विषाणु रोग, फल-सड़न के प्रति सहनशीन होती है। फल छोटे, हल्के हरे, 5-6 सेमी0 लम्बे, तथा ऊपर की तरफ लगते है। इसके हरे फलों औसतन उपज 80-90 कु./हे. होती है।

पंजाब लाल- यह किस्म पत्ती मोड़ विषाणु रोग, टमाटर मोजैक विषाणु तथा खीरा मोजैक विषाणु से अवरोधी तथा फल-सड़न, थ्रिप्स एवं माइट्स से सहनशील होते है। इसके हरे फलों की औसतन उपज 100-110 कु./हे. होती है।

अन्य मुक्त परागित किस्मों जैसे कि भास्कर, जवाहर मिर्च-218, अर्का लोहित, आजाद मिर्च-1, गुजरात मिर्च 101, भाग्यलक्ष्मी इत्यादि भी काफी प्रचलित है।

संकर किस्में

काशी सुर्ख- यह एक नर बन्ध्य आधारित संकर किस्म है जिसके फल सूखे तथा हरे फलोत्पादन हेतू उत्तम होते है। पौधे लम्बे, झाड़ीनुमा, ओजस्वी तथा फल 10-11 सेमी0 लम्बे एवं हल्के हरे रंग के होते है। पौध रोपण के 50-55 दिनों बाद हरे फल तुड़ाई के योग्य हो जाते है। इसके हरे फलों की औसत उपज 200-250 कु./हे. होती है।

काशी अगेती- पौधे लम्बे एवं ओजस्वी होते है, फल सीधे लम्बे तथा हरे रंग के प्रथम तुड़ाई पौध रोपण के मात्र 40-45 दिनों बाद ली जा सकती है तथा यह उत्तम भण्डारण क्षमता वाली होती है। हरे फल का उत्पादन लगभग 200 कु./हे. होती है।

काशी तेज- यह एक नर बन्ध्य आधारित संकर किस्म है। फल 10-12 सेमी0 लम्बे, हल्के हरे तथा ताजा व सूखे फल के लिए उत्तम किस्म है। इस किस्म से लगभग 150-200 कु./हे. हरे मिर्च की उपज प्राप्त होती है।

अर्का मेघना- यह एक नर बन्ध्य आधारित संकर किस्म है जिसके पौध लम्बे, ओजस्वी एवं गहरे हरे रंग के होते है। फल 8-10 सेमी. लम्बे, मोटे तथा वजनी होते है। पौध रोपण के 50-55 दिनों बाद प्रथम तुड़ाई योग्य हो जाते है। हरे एवं लाल दोनों फल उत्पाद हेतू उत्तम किस्म है। हरे फल का उत्पादन लगभग 150-200 कु./हे. होती है।

अर्का हरिता- इस नर बन्ध्य आधारित संकर किस्म के फल हरे एवं लाल दोनों के लिए उपयुक्त होते है। फल पतले लम्बे, हरे रंग के तथा चरपरे होते है। पौध रोपण के 55 दिनों बाद हरे फलों की प्रथम तुड़ाई की जा सकती है। हरे फल का उत्पादन लगभग 150-200 कु./हे. होती है।

अन्य संकर किस्में जैसे कि तेजस्विनी, एन.एस.-1101, दिव्य ज्योति, सोल्जर इत्यादि भी काफी प्रचलित है।

भूमि की तैयारी

मिर्च की सफल खेती हेतू अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट या दोमट भूमि का चुनाव करना चाहिए। ऐसी मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6-6.5 के बीच हो, खेती के लिए उपयुक्त होती है। खेत की दो तीन जुताई करके पाटा लगा देते हैं ताकि खेत की मिट्टी भूर-भुरी हो जाय।

बुवाई एवं रोपण का समय

मैदानी क्षेत्रों में पौधशाला में बीज की बुवाई का उपयुक्त समय जून-अगस्त तथा रोपण का उचित समय जुलाई-सितम्बर है। जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में बीज की बुवाई मार्च-अप्रैल तथा अप्रैल-मई में रोपण कर लेते है।

बीज की मात्रा

एक हेक्टेयर खेत में मुक्त परागित किस्मों के 300-400 ग्राम बीज तथा संकर किस्म के 250 से 300 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

सौर्यीकरण

अप्रैल-मई के महीने में जब धूप की गर्मी ज्यादा हो, पौधशाला की हल्की सिंचाई करके सफेद 200 गेज की पालीथीन से नम क्यारी को 5-6 सप्ताह के लिए इस तरह ढक देते है कि क्यारियों के अन्दर हवा का आदान-प्रदान बिल्कुल न हो। इस प्रक्रिया द्वारा पौधशाला में खरपतवार के बीज, मिट्टी के अन्दर हानिकारक कीट, कवक एवं जीवाणु काफी हद तक नष्ट हो जाते है। बीज बुवाई से पहले पालीथीन को हटाकर मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभरी बना लेना चाहिए।

मिट्टी एवं बीज शोधन

बहुत से हानिकारक कवक एवं जीवाणु बीज को उगाने के समय अथवा उगाने के समय अथवा उगने के बाद नुकसान पहुॅंचाते है। अतः इसके लिए जरूरी है कि बुवाई से पहले मिट्टी तथा बीज दोनों को शोधित करके ही बोया जाय। बीज को कैप्टान अथवा बाविस्टिन (कार्बेन्डाजिम) की 2 ग्राम/किग्रा. बीज की दर

♣♣♣

फूलों की खेती: ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नया आयाम

स्वप्निल भारती- सहायक प्राध्यापक- सह- कनीय वैज्ञानिक, बिहार कृषि विश्वविद्‌लाय सबौर, भागलपुर
सुनीता कुशवाहा- वरीय वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञानं केंद्र, लादा, समस्तीपुर
परमवीर सिंह- सहायक प्राध्यापक- सह- कनीय वैज्ञानिक, बिहार कृषि विश्वविद्‌लाय सबौर, भागलपुर

विश्व के कई हिस्सों में फूलों की खेती एक लाभदायक व्यवसाय के रूप में उभर रही है। विश्व के फूलों की खेती के व्यापार में दो तिहाई हिस्सा अमेरिका, यूरोप और जापान का है। भारत के कुछ राज्यों में भी यह व्यवसाय बढ़ रही है। फूलों की खेती, जिसे भारत में उभरते हुए सूर्योदय उद्योग के रूप में जाना जाता है, तेज़ी से प्रगति कर रही है और देश के कृषि क्षेत्र में एक अहम बदलाव का संकेत दे रही है। अनुमान है कि यह उद्योग 2030 तक 5.9 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच जाएगा। भारत में फूलों की खेती अब केवल फूल उगाने और बेचने तक सीमित नहीं रही; यह देश की समृद्ध जैव विविधता, विविध जलवायु परिस्थितियों और घरेलू व अंतरराष्ट्रीय बाजारों में फूलों की बढ़ती मांग को दर्शाती है। फूलों की खेती एक श्रम-प्रधान उद्योग है जो छोटे पैमाने पर फूलों की खेती से लेकर खुदरा बिक्री और इवेंट सेवाओं तक विभिन्न स्तरों पर रोजगार पैदा कर सकता है। फूलों की खेती एक श्रम-प्रधान उद्योग है जो उत्पादन, वितरण और खुदरा क्षेत्र में रोजगार पैदा करता है।

परिचय

तेजी से हो रहे शहरीकरण के कारण शहरी आबादी का विस्तार हो रहा है, गरीबी को कम करने के लिए अभिनव और टिकाऊ समाधानों की तत्काल आवश्यकता है। फूलों और सजावटी पौधों की खेती, फूलों की खेती, एक आशाजनक समाधान के रूप में उभरी है। यह बहु-अरब डॉलर का उद्योग आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है और सामाजिक विकास के लिए अपार संभावनाएं रखता है। भारत में, फूलों की खेती एक संपन्न क्षेत्र के रूप में विकसित हुई है, जो सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं में गहराई से निहित है, साथ ही एक आकर्षक व्यवसाय उद्यम के रूप में भी विकसित हो रही है। पिछले दो दशकों में, इसने आय के बढ़ते स्तर, शहरीकरण, बदलती उपभोक्ता प्राथमिकताओं और कटे हुए और खुले फूलों की बढ़ती मांग के कारण उल्लेखनीय वृद्धि का अनुभव किया है। इसके आर्थिक महत्व के अलावा, फूलों की खेती सामाजिक लाभ प्रदान करती है, खासकर हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए। शहरी क्षेत्रों में, यह गरीबों के लिए कम लागत और सुलभ आजीविका विकल्प के रूप में कार्य करता है, जिससे उन्हें प्रवेश में न्यूनतम बाधाओं के साथ आर्थिक गतिविधियों में शामिल होने में सक्षम बनाया जाता है. हर साल फूलों की मांग तेजी से बढ़ रही है। यह नगदी फसल मानी जाती है। फूलों की खेती की फसलों में बेडिंग प्लांट, फूल वाले पौधे, पत्तेदार पौधे या घर के पौधे, कटी हुई हरी सब्जियाँ और कटे हुए फूल शामिल हैं। भारत में मुख्यत: रूप से खुले फूलों में मुख्या तौर पर गुलाब, गेंदा, गुलदाउदी, रजनीगंधा तथा कट फूलों के तौर पर गुलाब,

जरबेरा, लिलियम, रजनीगंधा, कारनेशन, ग्लेडियोलस आदि प्रमुख हैं। इन फूलों की खेती की संभावनाएं ज्यादा होती हैं फूलों की खेती करके किसान हर रोज पैसा कमा सकता है। फूलों के कई उपयोग हैं। भारत में घरों, हॉल, होटल, रेस्तरां, विवाह पंडालों, पूजा-अर्चना, त्यौहार व सार्वजनिक समारोहों की सजावट और सौंदर्यीकरण एवं अन्य कार्यक्रमों में फूलों का खूब इस्तेमाल किया जाता है। फूल का औषधीय महत्व भी है। इसका उपयोग सुगंध तैयार करने में किया जाता है। फूलों की खेती या फूलों की खेती बागवानी की एक शाखा है जो फूलों के उत्पादन और विपणन से संबंधित है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में फूलों की खेती का योगदान:

आय में वृद्धि: परंपरागत कृषि फसलों की तुलना में फूलों की खेती से किसानों को अधिक आमदनी प्राप्त हो रही है। गुलाब, गेंदा, रजनीगंधा जैसे फूलों की बाजार में उच्च मांग होने के कारण इनकी कीमत भी अच्छी मिलती है। इससे ग्रामीण परिवारों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है और जीवन स्तर बेहतर हो रहा है।

रोजगार के नए अवसर: फूलों की खेती से जुड़े कार्य जैसे बुवाई, कटाई, पैकिंग, सजावट और वितरण में अनेक लोगों को काम मिल रहा है। विशेषकर स्थानीय युवाओं, महिलाओं और कारीगरों को इनके माध्यम से रोजगार के नए अवसर प्राप्त हो रहे हैं, जिससे गाँवों में पलायन की प्रवृत्ति भी कम हो रही है।

महिला सशक्तिकरण: कई ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं स्वयं सहायता समूह बनाकर फूलों की खेती, उनका प्रसंस्करण और बाजार में विक्रय जैसे कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभा रही हैं। इससे उन्हें न केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता मिल रही है, बल्कि निर्णय लेने की क्षमता और सामाजिक सम्मान में भी वृद्धि हो रही है।

ग्रामीण उद्यमिता का विकास: फूलों की खेती ने किसानों और ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार की दिशा में प्रेरित किया है। वे अब पारंपरिक खेती से आगे बढ़कर नर्सरी व्यवसाय, फूलों की सजावट सेवा, शादी-ब्याह और अन्य आयोजनों के लिए फ्लोरल अरेंजमेंट, और यहां तक कि ऑनलाइन माध्यमों से फूलों की बिक्री जैसे आधुनिक उद्यमों को अपना रहे हैं। इससे स्थानीय स्तर पर उद्यमिता को बढ़ावा मिल रहा है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा मिल रही है।

पुष्प कृषि के लाभ

- भारत की कृषि जलवायु परिस्थितियाँ फूलों की खेती के विकास के लिए अनुकूल हैं, जिससे ऑफ सीजन में भी फूलों की घरेलू बाजार में आपूर्ति की जा सकती है और उन्हें निर्यात के लिए भी भेजा जा सकता है।
- फूलों की खेती से कट फ्लावर, बल्ब, बीज, जीवित पौधों आदि जैसे उत्पादों का उत्पादन विविध प्रकारों में बड़े पैमाने पर किया जा सकता है।
- प्राकृतिक कृषि जलवायु फूलों और पौध सामग्री के उत्पादन के लिए अनुकूल है, जिससे ग्रीनहाउस में महंगी हीटिंग और कूलिंग प्रणाली की आवश्यकता नहीं पड़ती।
- राज्य सरकार द्वारा ग्रीनहाउसों के संचालन के लिए आवश्यक बिजली पर घरेलू दरों के अनुसार शुल्क लिया जाता है, जिससे किसानों को बिजली की लागत में राहत मिलती है। यह नीति फूलों की खेती को प्रोत्साहित करने में सहायक होती है, क्योंकि इससे उत्पादन लागत कम होती है और ग्रीनहाउस संचालन अधिक किफायती बनता है।
- हालांकि राज्य के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों से पूरे वर्ष घरेलू बाजार के लिए फूलों की आपूर्ति की जाती है, लेकिन उच्च गुणवत्ता वाले फूलों के निर्यात हेतु उनका उत्पादन नियंत्रित वातावरण, यानी ग्रीनहाउस में ही किया जाता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उत्थान के लिए फूलों की खेती की संभावनाएं

- फूलों की खेती कई उद्यमशीलता के अवसर प्रदान करती है जो आय उत्पन्न कर, मूल्य श्रृंखला के विभिन्न स्तरों पर रोजगार पैदा करके गरीबी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इन अवसरों का लाभ ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के व्यक्ति उठा सकते हैं तथा स्थानीय अर्थव्यवस्था में योगदान और आजीविका में सुधार ला सकते हैं।
- ढीले फूलों का उत्पादन, जो मुख्य रूप से आंतरिक बाजार में सहायता करता है, छोटे किसानों या सीमित पूंजी वाले शहरी निवासियों के लिए एक सुलभ प्रवेश बिंदु है। धार्मिक या सांस्कृतिक उद्देश्यों के लिए फूलों की मांग विषेश तौर पर अधिक आबादी वाले देशों में हमेशा बनी रहती है। इनकी खेती करने से किसानो को लगातार आय प्राप्त हो सकती है। इसी तरह, कटे हुए फूलों का उत्पादन, जो निर्यात और घरेलू बाजारों की जरूरतों को पूरा करता है वो कम आय के किसानों को वैश्विक व्यापार में भाग लेने के अवसर प्रदान करता है। फूलों का निर्यात अंतरराष्ट्रीय खरीदारों द्वारा भुगतान की जाने वाली उच्च मूल्य के कारण आमदनी में उल्लेखनीय वृद्धि एवं साथ ही परिवहन, पैकेजिंग और विपणन जैसे संबंधित उद्योगों में रोजगार भी पैदा कर सकता है।

- नर्सरी उद्योग, जिसमें फलदार पौधों, फूलों और पत्तेदार पौधों के साथ-साथ गमलों में उगाए जाने वाले पौधों का उत्पादन शामिल है, उन लोगों के लिए उद्यमशीलता के अवसर प्रदान करता है जिनके पास ज़मीन या शहरी क्षेत्रों में छतों की सुविधा उपलब्ध है। गमलों में लगे पौधों और सजावटी पत्तियों की खेती करके, स्थानीय उद्यमी शहरी निवासियों की सजावटी और कार्यात्मक दोनों ज़रूरतों को पूरा किया जा सकता है। इससे न केवल खेती में रोज़गार पैदा होता है, बल्कि शहरों में खुदरा बिक्री के अवसर भी खुलते हैं, जिससे पौधों की देखभाल, बिक्री और डिलीवरी सेवाओं में छोटे व्यवसायों के विकास की अनुमति मिलती है। फूलों के बीजों का उत्पादन भी आय अर्जित करने का एक प्रभावी माध्यम है। यह छोटे किसानों को, जिनके पास सीमित पूंजी है, बिना किसी बड़े बुनियादी ढांचे की आवश्यकता के फूलों की खेती करने में सक्षम बनाता है।

इसके अतिरिक्त, फूलों से आवश्यक तेल, इत्र और अन्य मूल्यवर्धित उत्पादों के उत्पादन में गरीबी उन्मूलन की महत्वपूर्ण क्षमता है। इन उत्पादों की दुनिया भर में अच्छी मांग है, विषेश रूप से स्वास्थ्य, सौंदर्य और व्यक्तिगत देखभाल से जुड़े उद्योगों में। इसी तरह, सूखे फूलों से भी सजावटी सामग्री जैसे कि माला, पोटपुरी, कार्ड, गुलदस्ता आदि बनाना एक खास बाजार बनाता है जिसका फायदा स्थानीय कारीगर उठा सकते हैं। इन व्यवसायों में आमतौर पर कम निवेश की आवश्यकता होती है, लेकिन ये पर्याप्त लाभ देते हैं, खासकर जब इन उत्पादों को पर्यटकों को या ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म के ज़रिए बेचा जाए। शहरी क्षेत्रों में पौधों को किराए पर देने की सेवाएँ, खास तौर पर कॉर्पोरेट कार्यालयों या कार्यक्रमों में इस्तेमाल किए जाने वाले गमलों में लगे पौधों के लिए, एक और बढ़ता हुआ अवसर है।यह क्षेत्र पौधों के रखरखाव, डिलीवरी और ग्राहक सेवा से जुड़े व्यक्तियों के लिए भी रोजगार पैदा करता है। इसके अलावा, शहरी केंद्रों में लैंडस्केप डिज़ाइनिंग और पर्यावरण बागवानी सेवाओं की मांग तेज़ी से बढ़ रही है, जहाँ सौंदर्य और पर्यावरणीय कारणों से हरित स्थानों को महत्व दिया जाता है।

इसलिए, फूलों की खेती उद्यमशीलता के कई अवसर प्रदान करती है जो स्थायी नौकरी के अवसर पैदा करके, छोटे किसानों और शहरी उद्यमियों को सशक्त बनाकर और घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों बाज़ारों के ज़रिए आय पैदा करके गरीबी कम करने में योगदान दे सकती है। फूलों के उत्पादन से लेकर मूल्य-वर्धित सेवाओं तक, फूलों की खेती उद्योग का प्रत्येक क्षेत्र आर्थिक विविधीकरण का समर्थन करने, स्थानीय उद्यमशीलता को बढ़ावा देने और गरीबी में रहने वाले लोगों के लिए लचीले, सुलभ आय के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फूलों की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए प्रारंभिक कदम

1. जन-जागरूकता और उत्पाद प्रदर्शन

- इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया, सोशल मीडिया अभियानों, रेडियो कार्यक्रमों और स्थानीय समाचार पत्रों के माध्यम से फूलों के विविध उपयोग—जैसे सजावट, उपहार, धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम, सुगंध उद्योग आदि—के बारे में व्यापक जागरूकता फैलाएँ।
- फूल-उत्पाद प्रदर्शनियों, हाउस (consumer fairs) और थीम-आधारित उत्सवों का आयोजन कर उपभोक्ताओं को ताज़े कट-फूल, सूखे फूल-शिल्प, पॉटेड पौधे, पुष्प-सजावट पैकेज आदि के प्रत्यक्ष अनुभव का अवसर दें। इससे न केवल माँग बढ़ती है बल्कि किसानों और उद्यमियों को सीधे ग्राहक से जुड़ने का मंच भी मिलता है।

2. मेट्रो शहरों में 'बड़ी मंडी' मॉडल को बढ़ावा

- महानगरों में फूलों की सबसे अधिक खपत होती है; इसलिए व्यक्तिगत छोटी-छोटी फूल दुकानों तक आपूर्ति करने के बजाय, उत्पादकों को थोक फूल-मंडियों या विशेषीकृत 'फ्लावर क्लस्टर मार्केट' तक पहुँचाने हेतु प्रोत्साहित करें।
- बड़े बाजारों में केंद्रीकृत नीलामी-प्रणाली, प्री-कूल्ड भंडारण एवं गुणवत्ता वर्गीकरण सुविधाएँ उपलब्ध कराकर व्यापारियों को एक ही स्थान पर विविध किस्मों और मात्रा में फूल प्राप्त हो सकें।

3. दिल्ली और अन्य घरेलू टर्मिनल बाजारों में बाद-कटाई अवसंरचना

- दिल्ली जैसे प्रमुख उपभोग-केंद्रों पर आधुनिक 'टर्मिनल फ्लावर मार्केट' स्थापित करें, जिनमें प्री-कूलिंग चेम्बर, शीत गृह, वैक्यूम कूलर, सॉर्टिंग-ग्रेडिंग लाइनें, पैकेजिंग स्टेशन और रैपिड क्वालिटी-टेस्ट लैब हों।
- लॉजिस्टिक्स सुधारने के लिए हब-एंड-स्पोक मॉडल अपनाएँ—जहाँ निकटवर्ती उत्पादन क्षेत्रों से फाइबर या रेफ्रिजरेटेड वैन के माध्यम से शीघ्र परिवहन हो सके—ताकि फूलों की ताजगी और आयुष्यता बनी रहे।

4. उत्पादकों और वैज्ञानिक संस्थाओं के बीच ज्ञान-सेतु

- कृषि विश्वविद्यालयों, बागवानी अनुसंधान केंद्रों और केवीके (कृषि विज्ञान केंद्र) द्वारा फील्ड प्रदर्शन, प्रशिक्षण कार्यशालाएँ तथा ऑन-फ़ार्म परीक्षण आयोजित किए जाएँ, जिससे नवीनतम किस्में, पौध

ISSN: 3049-2211

संरक्षण तकनीक, फसल कटाई के बाद की देखभाल और मार्केट-इंटेलिजेंस किसानों तक पहुँचे।

- ‘फ्लोरिकल्चर इनोवेशन प्लेटफ़ॉर्म’ या डिजिटल ऐप के माध्यम से वैज्ञानिकों-किसानों-बाजार एजेंटों की त्वरित संवाद व्यवस्था हो, ताकि समस्याओं का समाधान रीयल-टाइम में हो सके तथा नयी तकनीकी अपनाने की गति बढ़े।

भारत के फ्लोरीकल्चर उद्योग में प्रमुख चुनौतियाँ

ज्ञान की कमी: फ्लोरीकल्चर एक उभरती हुई अवधारणा है, लेकिन वैज्ञानिक और व्यावसायिक दृष्टिकोण से इसकी पर्याप्त समझ विकसित नहीं हो पाई है, जिसके कारण उत्पादन और विपणन में कई तरह की अक्षमताएँ देखने को मिलती हैं।

भूमि जोत का आकर का छोटा होना: अधिकांश फ्लोरीकल्चर किसानों के पास सीमित भूमि जोत होती है, जिससे वे बड़े पैमाने पर आधुनिक कृषि तकनीकों में निवेश करने में सक्षम नहीं हो पाते।

असंगठित विपणन: भारत में भले ही एक विशाल घरेलू बाजार मौजूद है, लेकिन विपणन प्रणाली के बिखरे होने और नीलामी यार्ड तथा नियंत्रित भंडारण जैसी संगठित सुविधाओं की कमी के कारण किसान उचित मूल्य नहीं प्राप्त कर पाते। इसके अतिरिक्त, अधिशेष उत्पादन के प्रबंधन और बढ़ती गुणवत्ता की मांग को पूरा करने के लिए आधुनिक विपणन संरचनाओं का अभाव भी एक बड़ी चुनौती है।

अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा: उत्पादन के बाद उचित प्रबंधन और कोल्ड स्टोरेज की कमी के कारण, विशेष रूप से घरेलू बाजार के लिए उगाए गए फूलों की गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है।

जैविक और अजैविक तनाव: खुले खेतों में फूलों की खेती के दौरान फसलें विभिन्न प्रकार के तनावों का सामना करती हैं, जिससे उनकी उपज उच्च गुणवत्ता वाले निर्यात बाजारों के लिए कम उपयुक्त बन जाती है।

उच्च प्रारंभिक लागत: वाणिज्यिक फूलों की खेती के लिए मजबूत बुनियादी ढांचे में भारी निवेश की जरूरत होती है, लेकिन किसान किफायती वित्तीय विकल्पों तक पहुँचने में कठिनाई का सामना करते हैं। ऐसे में राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड की सॉफ्ट लोन पहल जैसी और अधिक योजनाओं की आवश्यकता महसूस होती है।

निर्यात संबंधी बाधाएँ: उच्च हवाई मालभाड़ा दरें और सीमित कार्गो क्षमता, भारतीय फ्लोरीकल्चर उत्पादों की वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष

फूलों की खेती न केवल एक लाभदायक कृषि विकल्प बन रही है, बल्कि यह ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी बनती जा रही है। इससे रोजगार, आय, सशक्तिकरण और उद्यमिता – चारों ही क्षेत्रों में सकारात्मक बदलाव आ रहा है। पुष्पकृषि उद्योग ऐसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सतत उपयोग के माध्यम से राज्य की ग्रामीण आबादी के एक वर्ग को आय-सृजन के अवसर प्रदान करके आर्थिक गतिविधि के लिए अपार संभावनाएं प्रदान करता है।

♣♣♣

पुनर्योजी कृषि: स्थाई खेती पद्धति

[1]सौरभ एवं [2]अक्षित कटारिया
राजा महेन्द्र प्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुरुकुल नारसन, हरिद्वार (उत्तराखंड)

पुनर्योजी कृषि की अवधारणा

पुनर्योजी कृषि एक कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र-आधारित दृष्टिकोण है, जिसका उद्देश्य मृदा स्वास्थ्य और जैव विविधता का संरक्षण करना, मृदा को फिर से जीवंत करना और जलवायु परिवर्तन से निपटना है।

पुनर्योजी कृषि की परिभाषा

पुनर्योजी कृषि एक ऐसी खेती प्रणाली है, जिसका उद्देश्य केवल उत्पादन नहीं, बल्कि मृदा, जलवायु, जैव विविधता और मानव समुदायों के स्वास्थ्य को पुनः सशक्त बनाना है। यह पद्धति उस प्राकृतिक संतुलन को संरक्षित करती है, जिसे पारम्परिक रसायन-आधारित खेती ने वर्षों में बिगाड़ दिया है। पारम्परिक कृषि में रासायनिक खाद और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग होता है, जिससे मृदा की उर्वरता, भूजल स्तर और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, पुनर्योजी कृषि मृदा को जीवंत करती है।

पुनर्योजी कृषि क्या है?

पुनर्योजी कृषि एक दृष्टिकोण है, जिसका उद्देश्य खेती के पारिस्थितिकी तंत्र, विशेष रूप से मृदा स्वास्थ्य को संरक्षण करना, पर्यावरण की रक्षा करना और जलवायु लचीलेपन में सुधार करना है। यह दृष्टिकोण विभिन्न कृषि और पारिस्थितिक पद्धतिओं जैसे कि फसल चक्र, खाद बनाना, सिंथेटिक इनपुट में कमी या यहाँ तक कि कृषि वानिकी पर आधारित है। इन टिकाऊ पद्धतिओं का उपयोग जैव विविधता को बढ़ावा देता है और बेकार भूमि को पुनर्जीवित करता है। मृदा स्वस्थ होती है और जल संसाधन संरक्षित होते हैं। परिणामस्वरूप, खेती अधिक उत्पादक और लाभदायक है और उत्पादक लगातार पैदावार बनाए रख सकते हैं।

बड़ी तस्वीर में, पुनर्योजी कृषि अधिक प्रकृति-आधारित प्रथाओं का उपयोग करके पर्यावरण पर दबाव को कम करती है जो मिट्टी के कामकाज का समर्थन करती है। मृदा स्वास्थ्य पर इस दृष्टिकोण का ध्यान कई तरीकों से जलवायु परिवर्तन को भी कम कर सकता है, जैसे कि मिट्टी में बढ़े हुए कार्बन भंडारण के माध्यम से।

पुनर्योजी कृषि पद्धतियों की आवश्यकता

पारम्परिक कृषि पद्धतियाँ पर्यावरण पर इसके कई प्रतिकूल परिणाम हैं और पारिस्थितिक तंत्र की जैव विविधता के लिए विनाशकारी हैं। इन पद्धतियों के कारण मृदा क्षरण वातावरण में कार्बन छोड़ता है, जो जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। पारम्परिक कृषि से मृदा स्वास्थ्य में भी गिरावट आती है, जिससे दीर्घावधि में मृदा उत्पादकता में कमी आती है। इससे खाद्य सुरक्षा को खतरा है। मृदा उत्पादकता में गिरावट विभिन्न पारम्परिक पद्धतियों, जैसे कृषि प्रणालियों में रसायनों के अत्यधिक इनपुट के कारण है। उदाहरण के लिए, रासायनिक कीटनाशक लाभकारी जीवों

को नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे कीटों और बीमारियों से लड़ने की उनकी क्षमता कम हो जाती है, लेकिन वे मृदा में भी प्रवेश करते हैं और जहरीले अवशेष छोड़ते हैं। कीटनाशक भी जलवायु परिवर्तन में योगदान करते हैं, क्योंकि वे मृदा कार्बन सोखने की क्षमता को प्रभावित करते हैं मृदा जीवों के विघटन के माध्यम से अन्य पद्धतिएं जैसे सघन जुताई इससे मृदा संरचना भी बाधित होती है और मृदा कटाव होता है।

पुनर्योजी कृषि के मुख्य सिद्धांत

1. मृदा उर्वरता को संरक्षित करना: जैविक खाद, वर्मीकम्पोस्ट और फसल अपशिष्ट का प्रयोग।

2. रासायनिक आदानों में कमी: कीटनाशकों और उर्वरकों का न्यूनतम उपयोग।

3. आच्छादित फसलों का उपयोग: मृदा सतह को ढ़कने के लिए पौधे जो क्षरण को रोकते हैं।

4. पशुपालन के साथ समेकन: गोबर और पशु अपशिष्ट से पोषण।

5. फसल चक्र परिवर्तन: विभिन्न फसलों का रोपण ताकि मृदा एकसमान न हो।

6. न्यूनतम जुताई: मृदा की परतों को बिना बाधित किए खेती।

7. जैविक पदार्थों की पुनः वापसी: सभी कार्बनिक अपशिष्टों को मृदा में लौटाना।

पुनर्योजी कृषि की प्रमुख पद्धतियां

1. मृदा क्षरण कम करना: बिना जुताई या न्यूनतम जुताई, और फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर रखना, मृदा को वायु और जल से होने वाले क्षरण से बचाता है।

2. फसल चक्रण: मृदा उर्वरता बनाए रखने और कीटों को नियंत्रित करने के लिए अलग-अलग फसलों को बारी-बारी से उगाया जाता है।

3. आवरण फसल: मुख्य फसलों के बीच के समय में मृदा को सुरक्षित रखने और उसकी उर्वरता बढ़ाने के लिए कम अवधि वाली फसलें उगाई जाती हैं। जैसे मूँग

4. कृषि वानिकी: खेती प्रणालियों में पेड़ों और झाड़ियों को एकीकृत करना।

5. रासायनिक इनपुट में कमी: सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम करना।

6. कम जुताई या बिना जुताई वाली खेती: मिट्टी को कम से कम छेड़ा जाता है ताकि उसके जटिल जाल को नुकसान न हो और क्षरण कम हो।

7. जैविक खाद का उपयोग: मृदा को पोषक तत्व प्रदान करने के लिए जैविक पदार्थों का उपयोग करना।

पुनर्योजी कृषि के लाभ

1. मृदा का स्वास्थ्य: मृदा उर्वरता, जल धारण क्षमता और जैविक पदार्थ में सुधार होता है।

2. जलवायु परिवर्तन से बचाव: मृदा में कार्बन को संग्रहित करके और बाढ़ और सूखे जैसी चरम मौसमी घटनाओं के प्रति लचीलापन बढ़ाकर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में मद् करती है।

3. जैव विविधता: पारिस्थितिकी तंत्र में जैव विविधता को बढ़ावा देती है।

4. जल संरक्षण: पानी का कुशल उपयोग और अपवाह को कम करने में मदद करती

सारांश:

पुनर्योजी कृषि एक समग्र कृषि प्रणाली है, जो रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग को कम करने, खेतों की जुताई में कमी, पशुधन को एकीकृत करने तथा मृदा आवरण फसलों का उपयोग करने जैसे तरीकों के माध्यम से मृदा स्वास्थ्य, भोजन की गुणवत्ता, जैव विविधता में सुधार तथा जल और वायु गुणवत्ता पर केंद्रित है। पुनर्योजी कृषि (Regenerative Agriculture) आज की खेती का बेहतरीन तरीका सिद्ध हो रहा है, जो किसानों के साथ-साथ पर्यावरण के लिए भी लाभप्रद है। इस प्रणाली से मृदा उर्वरता बढ़ती है और फसल की पैदावार लंबे समय तक अच्छी बनी रहती है। यह विधि जल बचत में भी मदद करती है, जिससे कम जल में भी अच्छे परिणाम मिलते हैं। इतना ही नहीं इस विधि से रासायनिक उर्वरकों का कम उपयोग होता है, जिससे खेतों की सेहत सुधरती है और किसानों को शुद्ध व सुरक्षित फसलें मिलती हैं। पुनर्योजी कृषि अधिक स्थायी रूप से भोजन का उत्पादन करने के लिए एक अभिनव और समग्र दृष्टिकोण है। यह कई महत्वपूर्ण पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने में मदद कर सकता है, जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का नुकसान या रासायनिक कीटनाशकों जैसे कृषि रसायनों पर निर्भरता कम करती है।

पुनर्योजी कृषि न केवल खेती का एक तरीका है, बल्कि यह एक जीवनशैली और प्रकृति के साथ तालमेल की प्रक्रिया है। जलवायु संकट, मृदा क्षरण और बढ़ती जनसंख्या के बीच यही पद्धति भविष्य की खेती का मजबूत आधार बन सकती है। यदि सरकार, किसान और उपभोक्ता मिलकर कार्य करें, तो पुनर्योजी कृषि एक दूसरी हरित क्रांति बन सकती है।

♣♣♣

ISSN: 3049-2211

कृषक मंच - जनवरी 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 जनवरी 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: